सामाजिक विज्ञान

हमारे अतीत-2

कक्षा 7 के लिए
इतिहास की पाठ्यपुस्तक

विद्यया ऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

2024-25

0761 – हमारे अतीत – 2
कक्षा 7 के लिए इतिहास की पाठ्यपुस्तक

ISBN 81-7450-755-8

प्रथम संस्करण
मई 2007 ज्येष्ठ 1929

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007, जनवरी 2009, दिसंबर 2009, जनवरी 2011, जनवरी 2012, अक्तूबर 2012, नवंबर 2013, दिसंबर 2014, दिसंबर 2015, दिसंबर 2016, जनवरी 2018, जनवरी 2019, अगस्त 2019, मार्च 2021

संशोधित संस्करण
जून 2022 ज्येष्ठ 1944

पुनर्मुद्रण
मार्च 2024, चैत्र 1946,

PD 75T SU

© ***राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007, 2022***

₹ 65.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशन प्रभाग में प्रकाशित तथा प्रभात पैकेजिंग प्राइवेट लिमिटेड, सी–63, औद्योगिक क्षेत्र, साइट–ए, मथुरा – 281 001 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फ़ोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फ़ीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पानीहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*अनूप कुमार राजपूत*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक (प्रभारी)	:	*अमिताभ कुमार*
सहायक संपादक	:	*शशि चड्डा*
सहायक उत्पादन अधिकारी	:	*राजेश पिप्पल*

आवरण एवं सज्जा
आर्ट क्रिएशंस

कार्टोग्राफ़ी
कार्टोग्राफ़िक डिज़ाइन एजेंसी

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाये हुए है। नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नये ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितनी वार्षिक कैलेण्डर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और इस पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार नीलाद्रि भट्टाचार्य की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों,

© NCERT not to be republished

सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन

कोविड-19 महामारी को देखते हुए, विद्यार्थियों के ऊपर से पाठ्य सामग्री का बोझ कम करना अनिवार्य है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020* में भी विद्यार्थियों के लिए पाठ्य सामग्री का बोझ कम करने और रचनात्मक नज़रिए से अनुभवात्मक अधिगम के अवसर प्रदान करने पर ज़ोर दिया गया है। इस पृष्ठभूमि में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने सभी कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों को पुनर्संयोजित करने की शुरुआत की है। इस प्रक्रिया में रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा पहले से ही विकसित कक्षावार सीखने के प्रतिफलों को ध्यान में रखा गया है।

पाठ्य सामग्रियों के पुनर्संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा गया है —

- एक ही कक्षा में अलग-अलग विषयों के अंतर्गत समान पाठ्य सामग्री का होना;
- एक कक्षा के किसी विषय में उससे निचली कक्षा या ऊपर की कक्षा में समान पाठ्य सामग्री का होना;
- कठिनाई स्तर;
- विद्यार्थियों के लिए सहज रूप से सुलभ पाठ्य सामग्री का होना, जिसे शिक्षकों के अधिक हस्तक्षेप के बिना, वे खुद से या सहपाठियों के साथ पारस्परिक रूप से सीख सकते हों;
- वर्तमान संदर्भ में अप्रासंगिक सामग्री का होना।

वर्तमान संस्करण, ऊपर दिए गए परिवर्तनों को शामिल करते हुए तैयार किया गया पुनर्संयोजित संस्करण है।

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

मुख्य सलाहकार

नीलाद्रि भट्टाचार्य, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सलाहकार

कुणाल चक्रबर्ती, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सुनील कुमार, रीडर, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदस्य

अनिल सेठी, *पूर्व प्रोफ़ेसर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

कुमकुम रॉय, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

केशवन वेलूथट, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, मंगलोर विश्वविद्यालय, मंगलौर, कर्नाटक

चेतन सिंह, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश

नैना दास गुप्ता, लेक्चरर, इतिहास विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

फरहत हसन, रीडर, इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

भैरवी प्रसाद साहू, *प्रोफ़ेसर* तथा *विभागाध्यक्ष*, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मिली राय, *सीनियर लेक्चरर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

रजत दत्ता, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

राजन गुरूकुल, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टायम, केरल

विजया रामास्वामी, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

शुचि बजाज, पी.जी.टी., इतिहास, स्प्रिंगडेल्स स्कूल, पूसा रोड, नयी दिल्ली

सरीला मित्र, पी.जी.टी., इतिहास, वसंत वैली स्कूल, वसंत कुंज, नयी दिल्ली

सी.एन. सुब्रहमणियम, निदेशक, एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद, मध्य प्रदेश

हिंदी अनुवाद

अनिल सेठी, रा.शै.अ.प्र.प.

कुसुम बाँठिया, भूतपूर्व रीडर, देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

परशुराम, भूतपूर्व निदेशक (राजभाषा), भारत सरकार

रीतू सिंह, रा.शै.अ.प्र.प.

संजीव कुमार, *सीनियर लेक्चरर*, देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सीमा एस. ओझा, *लेक्चरर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

रीतू सिंह, *लेक्चरर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

यह पुस्तक एक वर्ष के चिंतन, चर्चा, विचार-विमर्श और पुनर्लेखन का नतीजा है, जो पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के सदस्यों की योग्यता और समर्पण का प्रतिफल है। इस समय में हमने एक-दूसरे से बहुत सीखा। हमें उम्मीद है कि प्रकाशित पुस्तक चर्चा, लेखन और पुनर्लेखन के लंबे दौर के उत्साह और खुशियों को प्रतिबिंबित करती है। पुस्तक समिति के प्रत्येक सदस्य को उनकी अपनी-अपनी संस्थाओं एवं परिवारों से बहुत सहयोग और प्रोत्साहन मिला। इस अवसर पर हम उन सब को धन्यवाद देना चाहेंगे।

रा.शै.अ.प्र.प. की निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्य, प्रोफ़ेसर जे.एस. ग्रेवाल और शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मुज़फ्फर आलम ने अनेक अध्यायों पर अपनी टिप्पणियाँ दीं और हमारी प्रत्येक समस्या को बड़ी उदारता से सुलझाया। वियना विश्वविद्यालय की प्रोफ़ेसर एबा कोच ने अपने अनेक चित्र और तस्वीरों का उपयोग करने की इजाज़त दी। दिल्ली विश्वविद्यालय के पी.जी.डी.ए.वी. कालेज की डॉ. मीरा खरे ने कुछ प्रश्नों के उत्तर देने में बहुत तत्परता दिखाई और अनेक जानकारियाँ और चित्र प्रदान करके हमारी मदद की। हम इन सबके अत्यंत आभारी हैं।

आर्ट क्रिएशन्स की ऋतु टोपा द्वारा की गई किताब की बनावट और सज्जा के लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। इस पुस्तक के मानचित्र सतीश मौर्य ने बनाए हैं। हम उनकी सहनशीलता, तत्परता और कार्य-कुशलता के लिए उनके कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक के विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए हम डी.टी.पी. ऑपरेटर, गुरिन्दर सिह राय, अनिल शर्मा, ईश्वर सिह एवं विजय कौशल; कॉपी एडिटर, अंजना बख्शी; *प्रूफ रीडर*, अचल कुमार, शशि देवी तथा *कंप्यूटर इंचार्ज*, दिनेश कुमार का भी आभार व्यक्त करते हैं। इन सभी साथियों ने अपने-अपने कार्य तत्परता और कुशलता से पूरे किए।

परिषद्, इस संस्करण के पुनर्संयोजन के लिए पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों एवं विषय सामग्री के विश्लेषण हेतु दिए गए महत्वपूर्ण सहयोग के लिए उमेश अशोक कदम, *प्रोफ़ेसर*, सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़, जे.एन.यू., नयी दिल्ली; सुनील कुमार सिंह, *पी.जी.टी. इतिहास*, केंद्रीय विद्यालय, ए.एफ.एस., तुगलकाबाद, नयी दिल्ली; कृष्ण रंजन, *पी.जी.टी. इतिहास*, केंद्रीय विद्यालय, विकासपुरी; अर्चना वर्मा, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; श्रुति मिश्रा, *पी.जी.टी. इतिहास* एवं *विभागाध्यक्ष*, इतिहास, दिल्ली पब्लिक स्कूल, आर.के.पुरम., नयी दिल्ली; गौरी श्रीवास्तव, *प्रोफ़ेसर* एवं *विभागाध्यक्ष*; प्रत्यूष के. मंडल, *प्रोफ़ेसर*; सीमा एस. ओझा, *प्रोफ़ेसर*, सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग; मिली रॉय आनंद, *प्रोफ़ेसर*, जेंडर अध्ययन विभाग और शरद कुमार पाण्डेय, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, पाठ्यचर्या अध्ययन एवं विकास विभाग, रा.शै.अ.प्र.प. के प्रति आभार व्यक्त करती है।

© NCERT not to be republished

चित्रों एवं मानचित्रों के लिए आभार

हम निम्न लोगों का आभार व्यक्त करते हैं।

चित्र के लिए आभार

... *दिल्ली, आगरा, जयपुर: द गोल्डन ट्रायंगल* (अध्याय 4 चित्र 1);

अशर, कैथेरीन एंड सिथिया टालबोट. *इंडिया बिफोर यूरोप,* (अध्याय 8, चित्र 8);

अटिल, इसिन. द *ब्रश ऑफ़ दी मॉस्टर्स: ड्राइंग्स फ़्रॉम ईरान एंड इंडिया* (पिछला आवरण);

बंद्योपाध्याय, अमियकुमार. *बंकुरार मंदिर,* (अध्याय 7, चित्र 11, 12, 13, 14);

बेले, सी.ए.एन. *इलस्ट्रेटिड हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इंडिया*, 1600–1947 (अध्याय 8, चित्र 2, 4);

बीच, मिलो सी. एंड एबा कोच. *किंग ऑफ़ दी वर्ल्ड, द पादशाहनामा* (अध्याय 4, चित्र 2, 3, 4, 5);

सेंटर फॉर कल्चरल रीसोर्स एंड ट्रेनिंग, नयी दिल्ली (अध्याय 2, चित्र 4; अध्याय 7, चित्र 3, 5);

दास, अनंत. *जाट वैष्णव कथा* (अध्याय 6, चित्र 7);

इटॉन, रीचर्ड. *सूफ़ीस ऑफ़ बीजापुर* (अध्याय 6, चित्र 6);

इडवरडेस, माइकेल. *इंडियन टेम्पल्स एंड पैलेसेस* (अध्याय 2, चित्र 1);

गैसकॉगानी, बामबर. द *ग्रेट मुग़ल्स* (अध्याय 4, चित्र 6);

गोस्वामी, बी.एन. द *वर्ड इज़ सेक्रेड, सेक्रेड इज़ द वर्ड* (अध्याय 2, चित्र 2; अध्याय 6, चित्र 1; अध्याय 7, चित्र 2);

हूजा, रीमा. *ए हिस्ट्री ऑफ़ राजस्थान* (अध्याय 8, चित्र 5);

कोठारी, सुनील. कत्थक: *इंडियन क्लासिकल डांस आर्ट* (अध्याय 7, चित्र 6);

लॉफोंट, जीन.मेरी. महाराजा रणजीत सिंह: *लॉर्ड ऑफ़ दी फाइव रीवर्स* (अध्याय 8, चित्र 6);

मोसेलॉस, जिम, जेकी मेंजेस, प्रतापादित्या पाल. डांसिग टू दी फ़्लूट: *म्यूजिक एंड डांस इन इंडियन आर्ट* (अध्याय 5, चित्र 1; अध्याय 6, चित्र 4, 8, 9; अध्याय 7, चित्र 8, 9);

© NCERT not to be republished

माइकल, जॉर्ज. *ऑर्किटेक्चर एंड आर्ट ऑफ़ सदर्न इंडिया*
(अध्याय 6, चित्र 2);
पाल, प्रतापादित्या. *कोर्ट पेंटिंग्स ऑफ़ इंडिया*
(अध्याय 5, चित्र 2; अध्याय 6, चित्र 3; अध्याय 7, चित्र 4, 7, 8);
सफ़ादी, वाई.एच. *इस्लामिक कैलीग्राफ़ी*
(अध्याय 1, चित्र 2);
सिह, रूपेंदर, *गुरु नानक: हिज़ लाइफ एंड टीचिंग्स*
(अध्याय 6, चित्र 11);
स्ट्राँग, सूसान. द *आर्ट्स ऑफ़ दी सिख किंग्डम्स*
(अध्याय 6, चित्र 10, पेज xii)
थैक्सटन, व्हीलर एम. (ट्रांसलेटेड, एडीटिड एंड एनोटेड), *जहाँगीरनामा, मेमोरीज़ ऑफ़ जहाँगीर, एम्परर ऑफ इंडिया* (अध्याय 4, चित्र 7);
वेल्च, स्टूअर्ट कैरी. इंडिया, *आर्ट एंड कल्चर*: 1300 –1900
(अध्याय 5, चित्र 4, 6, 7; अध्याय 6, चित्र 5);
वेल्च, स्टूअर्ट कैरी. *इम्पीरियल मुग़ल पेंटिंग*
(अध्याय 1, चित्र 1);

मानचित्र के लिए आभार

श्वाट्ज़ब्र्ग, जे.ई. *ए हिस्टोरिकल एटलस ऑफ़ साउथ एशिया*
(अध्याय 1, मानचित्र 1, 2);

विभिन्न किताबों एवं एटलसों से लिए गए सम्पादित तथा प्रयोग में लाए गए मानचित्र:

अशर, केथराइन एंड सिथिया टॉलबोट. इंडिया *बिफोर यूरोप*
(अध्याय 4, मानचित्र 1);
बेले, सी.ए. *इंडियन सोसाइटी एंड दी मेकिंग ऑफ़ दी ब्रिटिश एम्पायर*
(अध्याय 8, मानचित्र 1, 2);
फरकेनबर्ग, आर.ई. (संपा.) *देहली थ्रू* द ऐजिस
(अध्याय 3, मानचित्र 1);
हबीब, इरफान. *एन एटलस ऑफ दी मुग़ल एम्पायर*
(अध्याय 5, मानचित्र 2);
श्वाट्ज़बर्ग, जे. ई. *ए हिस्टोरिकल एटलस ऑफ़ साउथ एशिया*
(अध्याय 1, मानचित्र 3)

© NCERT not to be republished

विषय सूची

आमुख *iii*
पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन *v*
इस पुस्तक में *xii*

1. प्रारंभिक कथन: हजार वर्षों के दौरान हुए परिवर्तनों की पड़ताल 1
2. राजा और उनके राज्य 16
3. दिल्ली: बारहवीं से पंद्रहवीं शताब्दी 30
4. मुग़ल: सोलहवीं से सत्रहवीं शताब्दी 39
5. जनजातियाँ, खानाबदोश और एक जगह बसे हुए समुदाय 49
6. ईश्वर से अनुराग 62
7. क्षेत्रीय संस्कृतियों का निर्माण 80
8. अठारहवीं शताब्दी में नए राजनीतिक गठन 96

© NCERT not to be republished

इस पुस्तक में

प्रत्येक अध्याय को कई भागों में बाँटा गया है। इन भागों को पढ़ने, इस पर आपस में बातचीत करने और समझने के बाद ही अगले अध्याय की शुरुआत कीजिए। प्रत्येक अध्याय में निम्न पर ध्यान दीजिए।

1

परिभाषा

कुछ अध्यायों में परिभाषाएँ दी गई हैं।

2

अतिरिक्त जानकारी

बहुत से अध्यायों में रोचक जानकारी युक्त अतिरिक्त बॉक्स दिए गए हैं।

3

स्रोत बॉक्स

बहुत से अध्यायों में *स्रोत* से एक अंश दिया गया है। इन्हीं के आधार पर इतिहासकार, इतिहास लिखते हैं। इन्हें ध्यान से पढ़कर, इनमें दिए गए प्रश्नों पर चर्चा कीजिए।

हमारे बहुत सारे *स्रोत*, चित्रों के रूप में हैं। प्रत्येक *चित्र* की अपनी एक कहानी है।

4

आपको कुछ अध्यायों में मानचित्र भी मिलेंगे। इन्हें ध्यानपूर्वक देखकर अपने अध्याय में बताए गए स्थानों को ढूँढिए।

5

?

प्रत्येक अध्याय में कुछ अंतर्निहित प्रश्न एवं क्रियाकलाप दिए गए हैं, जिन्हें विशेष रूप से दर्शाया गया है। इन पर विचार-विमर्श के लिए कुछ समय दीजिए।

© NCERT not to be republished

6

कल्पना करें

एक छोटा-सा खंड है 'कल्पना करें'
अब आपकी बारी है अतीत में जाकर
उस समय में जीवन का जायज़ा लेने की।

7

बीज शब्द

प्रत्येक अध्याय के अंत में आपको बीज शब्दों की एक सूची मिलेगी। ये आपको अध्याय में आए महत्त्वपूर्ण विचारों/विषयों की फिर से याद दिलाएँगे।

8

प्रत्येक अध्याय के अंत में विभिन्न तरह के कार्यकलाप दिए गए हैं – **फिर से याद करें, आइए समझें, आइए विचार करें तथा आइए करके देखें।**

इस तरह आपके पढ़ने, देखने, सोचने और करने के लिए इस पुस्तक में बहुत कुछ है। हमें पूरी आशा है कि आपको इसमें बहुत खुशी मिलेगी।

© NCERT not to be republished

1 प्रारंभिक कथन: हज़ार वर्षों के दौरान हुए परिवर्तनों की पड़ताल

0761CH01

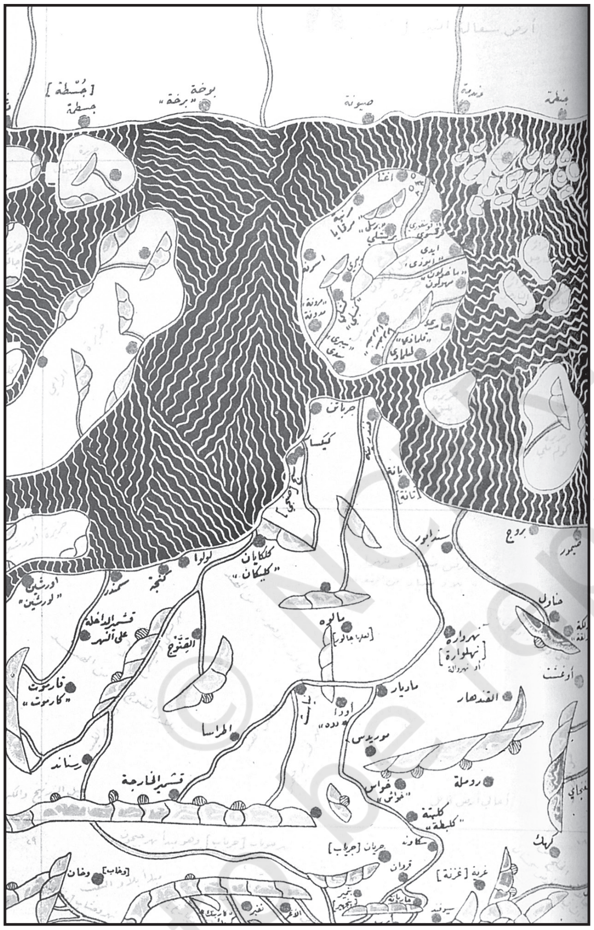

मानचित्र 1
बारहवीं सदी के भूगोलवेत्ता अल-इद्रीसी का बनाया हुआ दुनिया के नक्शे का एक हिस्सा जिसमें भारतीय उपमहाद्वीप को भूमि से समुद्र तक दिखाया गया है।

मानचित्र 1 और 2 पर नज़र डालिए। मानचित्र 1 अरब भूगोलवेत्ता अल-इद्रीसी ने 1154 में बनाया था। यहाँ जो नक्शा दिया गया है वह उसके द्वारा बनाए गए दुनिया के बड़े मानचित्र का एक हिस्सा है और भारतीय उपमहाद्वीप को दर्शाता है। मानचित्र 2 एक फ्रांसीसी **मानचित्रकार** ने 1720 में बनाया था। दोनों नक्शे एक ही इलाके के हैं मगर उनमें काफ़ी अंतर हैं। अल-इद्रीसी के नक्शे में दक्षिण भारत उस जगह है जहाँ हम आज उत्तर भारत ढूँढेंगे और श्रीलंका का द्वीप ऊपर की तरफ़ है। जगहों के नाम अरबी में दिए गए हैं और उनमें कुछ जाने-पहचाने नाम भी हैं, जैसे कि उत्तर प्रदेश

मानचित्रकार
जो व्यक्ति मानचित्र/नक्शे बनाता है।

© NCERT not to be republished

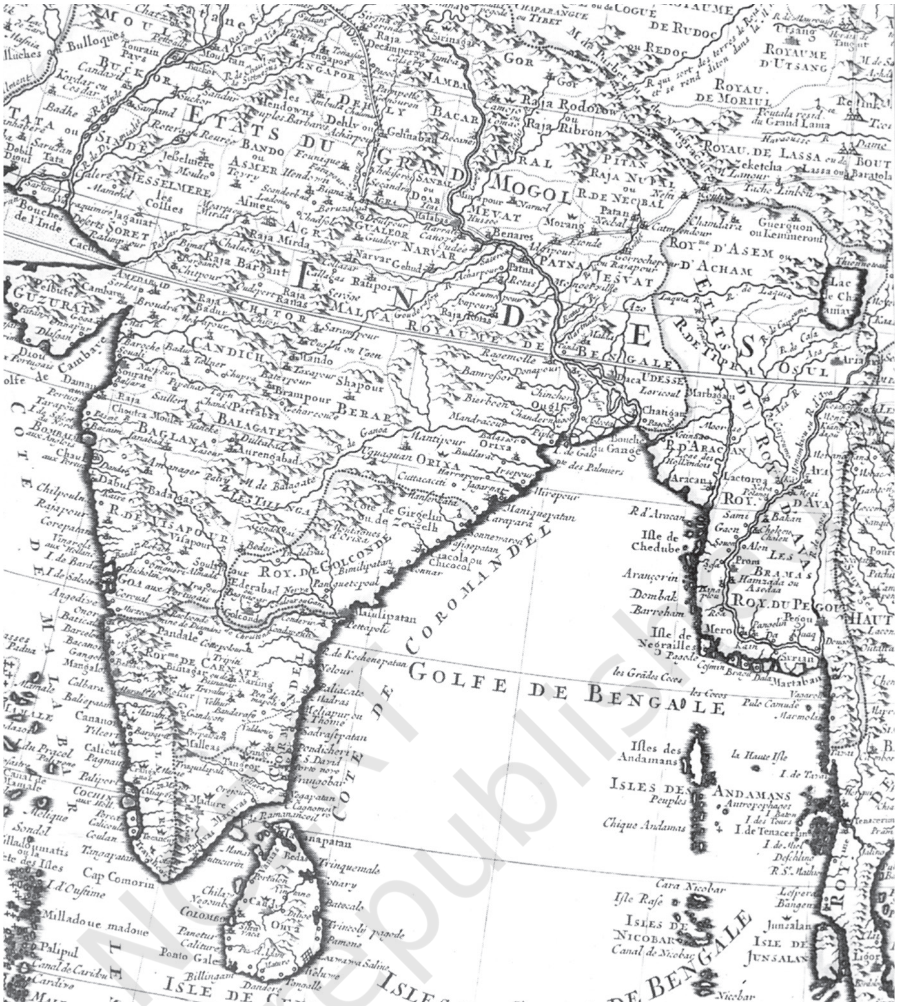

मानचित्र 2
अठारहवीं सदी के आरंभ में ग्विलॉम द लिस्ले के एटलस नूवो के अनुसार यह उपमहाद्वीप

का कन्नौज। मानचित्र 2 पहले मानचित्र के बनने के लगभग 600 वर्ष बाद बनाया गया। इस कालावधि में उपमहाद्वीप के बारे में सूचनाएँ काफ़ी बदल गईं थीं। यह नक्शा हमें ज़्यादा परिचित लगेगा। उसमें विशेषकर तटीय इलाकों के बारीक ब्यौरे देखकर आश्चर्य होता है। यूरोप के नाविक तथा व्यापारी अपनी समुद्र यात्रा के लिए इस नक्शे का इस्तेमाल किया करते थे।

?

लेकिन अब भीतरी इलाकों पर नज़र डालें। क्या इनमें भी उतने ही ब्यौरे हैं जितने समुद्र तट वाले हिस्से में? गंगा के मार्ग को देखें। इसे किस तरह से दर्शाया गया है? इस मानचित्र में तटीय और भीतरी इलाकों के बीच ब्यौरों और बारीकी का जो अंतर है, आपके ख्याल में उसका कारण क्या है?

© NCERT not to be republished

इतनी ही महत्त्वपूर्ण एक और बात यह है कि दूसरे युग तक मानचित्र-अंकन का विज्ञान भी बहुत बदल गया था। इतिहासकार जब बीते युगों के दस्तावेज़ों, नक्शों और लेखों का अध्ययन करते हैं तो उनके लिए उन सूचनाओं के संदर्भों का, उनकी भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों का ध्यान रखना ज़रूरी होता है।

नई और पुरानी शब्दावली

अगर समय के साथ-साथ सूचनाओं के संदर्भ बदलते हैं, तो भाषा और अर्थों के साथ क्या होता है? ऐतिहासिक अभिलेख कई तरह की भाषाओं में मिलते हैं और ये भाषाएँ भी समय के साथ-साथ बहुत बदली हैं। उदाहरण के लिए मध्ययुग की फ़ारसी, आधुनिक फ़ारसी भाषा से भिन्न है। यह भिन्नता सिर्फ़ व्याकरण और शब्द भंडार में ही नहीं आई है, समय के साथ शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं।

उदाहरण के लिए 'हिंदुस्तान' शब्द ही लीजिए। आज हम इसे आधुनिक राष्ट्र राज्य 'भारत' के अर्थ में लेते हैं। तेरहवीं सदी में जब फ़ारसी के इतिहासकार मिन्हाज-ए-सिराज ने हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग किया था तो उसका आशय पंजाब, हरियाणा और गंगा-यमुना के बीच में स्थित इलाकों से था। उसने इस शब्द का राजनीतिक अर्थ में उन इलाकों के लिए इस्तेमाल किया जो दिल्ली के सुलतान के अधिकार क्षेत्र में आते थे। सल्तनत के प्रसार के साथ-साथ इस शब्द के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र भी बढ़ते गए, लेकिन हिंदुस्तान शब्द में दक्षिण भारत का समावेश कभी नहीं हुआ। इसके विपरीत, सोलहवीं सदी के आरंभ में बाबर ने हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग इस उपमहाद्वीप के भूगोल, पशु-पक्षियों और यहाँ के निवासियों की संस्कृति का वर्णन करने के लिए किया। यह प्रयोग चौदहवीं सदी के कवि अमीर ख़ुसरो द्वारा प्रयुक्त शब्द 'हिंद' के ही कुछ-कुछ समान था। मगर जहाँ 'भारत' को एक भौगोलिक और सांस्कृतिक सत्त्व के रूप में पहचाना जा रहा था वहाँ हिंदुस्तान शब्द से वे राजनीतिक और राष्ट्रीय अर्थ नहीं जुड़े थे जो हम आज जोड़ते हैं।

किसी भी शब्द का प्रयोग करने में इतिहासकारों को बहुत सावधान रहना चाहिए क्योंकि अतीत में उन शब्दों के कुछ अलग ही अर्थ थे। उदाहरण के लिए 'विदेशी' जैसा सीधा-सादा शब्द ही ले लीजिए। हमारे लिए आज इसका अर्थ होता है, ऐसा व्यक्ति जो भारतीय न हो। मध्ययुग में, मानो किसी गाँव में

?

क्या आपको ऐसे कुछ और शब्दों का ध्यान आता है जिनके अर्थ भिन्न-भिन्न संदर्भों में बदल जाते हैं?

© NCERT not to be republished

आने वाला कोई भी अनजाना व्यक्ति, जो उस समाज या संस्कृति का अंग न हो, 'विदेशी' कहलाता था। (ऐसे व्यक्ति को हिंदी में परदेसी और फ़ारसी में अजनबी कहा जा सकता है।) इसलिए किसी नगरवासी के लिए वनवासी 'विदेशी' होता था किंतु एक ही गाँव में रहने वाले दो किसान अलग-अलग धार्मिक या जाति पंरपराओं से जुड़े होने पर भी एक-दूसरे के लिए विदेशी नहीं होते थे।

इतिहासकार और उनके स्रोत

इतिहासकार किस युग का अध्ययन करते हैं और उनकी खोज की प्रकृति क्या है, इसे देखते हुए वे अलग-अलग तरह के स्रोतों का सहारा लेते हैं। उदाहरण के लिए पिछले साल आपने गुप्तवंश के शासकों और हर्षवर्धन के बारे में पढ़ा। इस पुस्तक में हम मोटे तौर पर 700 से 1750 ईसवी तक लगभग हज़ार वर्षों के बारे में पढ़ेंगे।

इस काल के अध्ययन के लिए इतिहासकार जिन स्रोतों का प्रयोग करते हैं, उनमें आपको बहुत-सी बातें ऐसी मिलेंगी जो पिछले युग से वैसी ही चली आ रही हैं। इतिहासकार इस काल के बारे में सूचना इकट्ठी करने के लिए अभी भी सिक्कों, शिलालेखों, स्थापत्य (भवन निर्माण कला) तथा लिखित सामग्री पर निर्भर करते हैं। पर कुछ बातें पहले से काफ़ी भिन्न भी हैं। इस युग में प्रामाणिक लिखित सामग्री की संख्या और विविधता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई। इसके आगे इतिहासकार सूचनाओं के दूसरे प्रकार के स्रोतों का इस्तेमाल

कागज़ का मूल्य

इन दो प्रसंगों की तुलना कीजिए:

(1) तेरहवीं सदी के मध्य में एक विद्वान को एक पुस्तक की प्रतिलिपि की ज़रूरत पड़ी। उसके पास उतना कागज़ नहीं था इसलिए उसने एक ऐसी पांडुलिपि को धो डाला जिसकी उसे ज़रूरत नहीं थी, और उसके कागज़ को सुखाकर उसका इस्तेमाल कर लिया।

(2) एक सदी बाद अगर आप बाज़ार से कोई खाद्य पदार्थ खरीदते तो हो सकता है कि आपकी किस्मत अच्छी होती और दुकानदार वह वस्तु कागज़ में लपेटकर देता।

? *तो कागज़ कब अधिक महँगा था और कब आसानी से उपलब्ध था– तेरहवीं शताब्दी में या चौदहवीं शताब्दी में?*

© NCERT not to be republished

धीरे-धीरे कम करने लगे। इस समय के दौरान कागज़ क्रमशः सस्ता होता गया और बड़े पैमाने पर उपलब्ध भी होने लगा। लोग धर्मग्रंथ, शासकों के वृत्तांत, संतों के लेखन तथा उपदेश, अर्ज़ियाँ, अदालतों के दस्तावेज़, हिसाब तथा करों के खाते आदि लिखने में इसका उपयोग करने लगे। धनी व्यक्ति, शासक जन, मठ तथा मंदिर, पांडुलिपियाँ एकत्रित किया करते थे। इन पांडुलिपियों को पुस्तकालयों तथा **अभिलेखागारों** में रखा जाता है। इन पांडुलिपियों तथा दस्तावेज़ों से इतिहासकारों को बहुत सारी विस्तृत जानकारी मिलती है मगर साथ ही इनका उपयोग कठिन है।

उन दिनों छापेखाने तो थे नहीं, इसलिए लिपिक या नकलनवीस हाथ से ही पांडुलिपियों की प्रतिकृति बनाते थे। अगर आपने कभी किसी मित्र के गृहकार्य की नकल उतारी है तो आप जानते होंगे कि यह काम आसान नहीं है। कभी-कभी आपको अपने मित्र की लिखावट समझ में नहीं आती होगी और आपको मज़बूर होकर अंदाज़ ही लगाना पड़ता होगा कि क्या लिखा गया है। फलस्वरुप आपके लिखे में मित्र के लिखे हुए से कुछ छोटे-मोटे

अभिलेखागार
ऐसा स्थान जहाँ दस्तावेज़ों और पांडुलिपियों को संग्रहित किया जाता है। आज सभी राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के अभिलेखागार होते हैं जहाँ वे अपने तमाम पुराने सरकारी अभिलेख और लेन-देन के ब्यौरों का रिकॉर्ड रखते हैं।

चित्र 1
यह एक लघुचित्र की प्रतिकृति है जिसमें एक लिपिक किसी पांडुलिपि की नकल कर रहा है। इस चित्र का आकार सिर्फ़ 10.5 से.मी.×7.1 से.मी. है। इस छोटे आकार के कारण इसे लघुचित्र या मिनियेचर कहा जाता है। कभी-कभी इन लघुचित्रों का प्रयोग लेख में आयी पांडुलिपियों को स्पष्टता प्रदान करने के लिए किया जाता था। ये इतने सुंदर होते थे कि आगे चलकर संग्रहकर्ता अकसर इन चित्रों को पांडुलिपियों से अलग करके बेचने लगे थे।

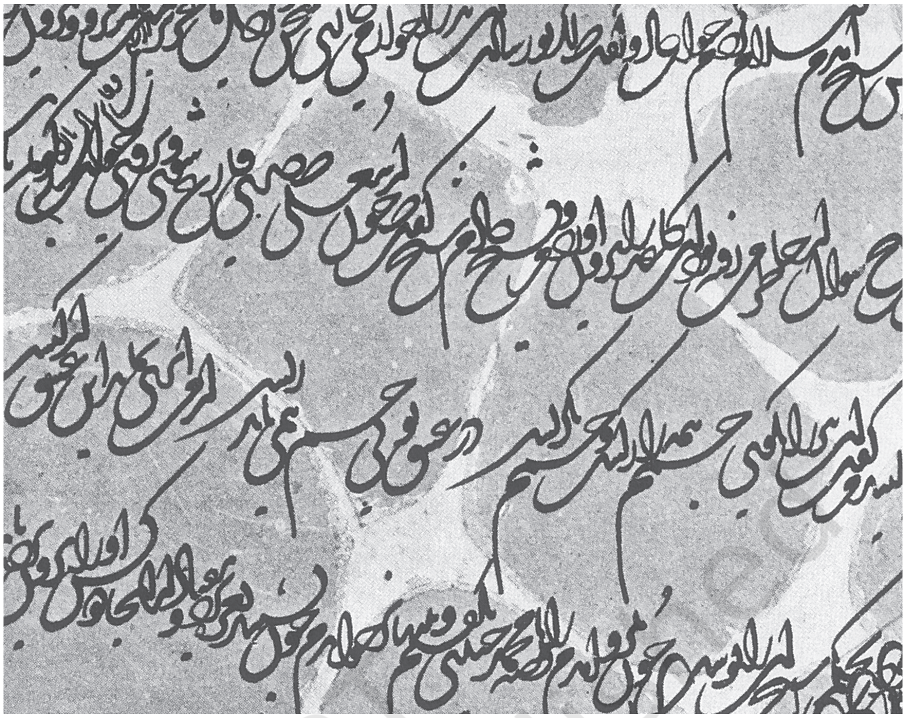

चित्र 2
लिखावट की भिन्न प्रकार की शैलियों के कारण फ़ारसी और अरबी पढ़ने में कठिनाई हो सकती है। नस्तलिक लिपि (बायीं ओर) में वर्ण जोड़कर धाराप्रवाह रूप से लिखे जाते हैं। फ़ारसी, अरबी के जानकारों के लिए इस लिपि को पढ़ना आसान होता है। शिक्स्त लिपि (दायीं ओर) अधिक सघन, संक्षिप्त और कठिन है।

लेकिन महत्त्वपूर्ण अंतर आ जाते होंगे। पांडुलिपि की प्रतिलिपि बनाने में भी कुछ-कुछ यही होता है। प्रतिलिपियाँ बनाते हुए लिपिक छोटे-मोटे फ़ेर-बदल करते चलते थे, कहीं कोई शब्द, कहीं कोई वाक्य। सदी दर सदी प्रतिलिपियों की भी प्रतिलिपियाँ बनती रहीं और अंततः एक ही मूल ग्रंथ की भिन्न-भिन्न प्रतिलिपियाँ एक-दूसरे से बहुत ही अलग हो गईं। इससे बड़ी गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई क्योंकि आज हमें लेखक की मूल पांडुलिपि शायद ही कहीं मिलती है। हमें बाद के लिपिकों द्वारा बनाई गई प्रतिलिपियों पर ही पूरी तरह निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए इस बात का अंदाज़ लगाने के लिए कि मूलतः लेखक ने क्या लिखा था, इतिहासकारों को एक ही ग्रंथ की विभिन्न प्रतिलिपियों का अध्ययन करना पड़ता है।

कई बार लेखक स्वयं भी समय-समय पर अपने मूल वृत्तांत में संशोधन करते रहते थे। चौदहवीं शताब्दी के इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने अपना वृत्तांत पहली बार 1356 में और दूसरी बार इसके दो वर्ष बाद लिखा था। दोनों में अंतर है लेकिन 1971 तक इतिहासकारों को पहली बार वाले वृत्तांत की जानकारी ही नहीं थी। यह पुस्तकालयों के विशाल संग्रहों में कहीं दबा पड़ा था।

2024-25

नए सामाजिक और राजनीतिक समूह

सन् 700 और 1750 के बीच के हज़ार वर्षों का अध्ययन इतिहासकारों के आगे भारी चुनौती रखता है, मुख्य रूप से इसलिए कि इस पूरे काल में बड़े पैमाने पर और अनेक तरह के परिवर्तन हुए। इस काल में अलग-अलग समय पर नई प्रौद्योगिकी के दर्शन होते हैं, जैसे, सिंचाई में रहट, कताई में चर्खे और युद्ध में आग्नेयास्त्रों (बारूद वाले हथियार) का इस्तेमाल। इस उपमहाद्वीप में नई तरह का खान-पान भी आया–आलू, मक्का, मिर्च, चाय और कॉफ़ी। ध्यान रहे कि ये तमाम परिवर्तन–नई प्रौद्योगिकियाँ और फ़सलें–उन लोगों के साथ आए जो नए विचार भी लेकर आए थे। परिणामस्वरूप यह काल आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का भी काल रहा।

इस युग में लोगों की गतिशीलता–एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना भी बहुत बढ़ गया था। अवसर की तलाश में लोगों के झुंड के झुंड दूर-दूर की यात्राएँ करने लगे थे। इस उपमहाद्वीप में अपार संपदा और अपना भाग्य गढ़ने के लिए अपार संभावनाएँ मौजूद थीं। इस काल में जिन

चित्र 3
रहट

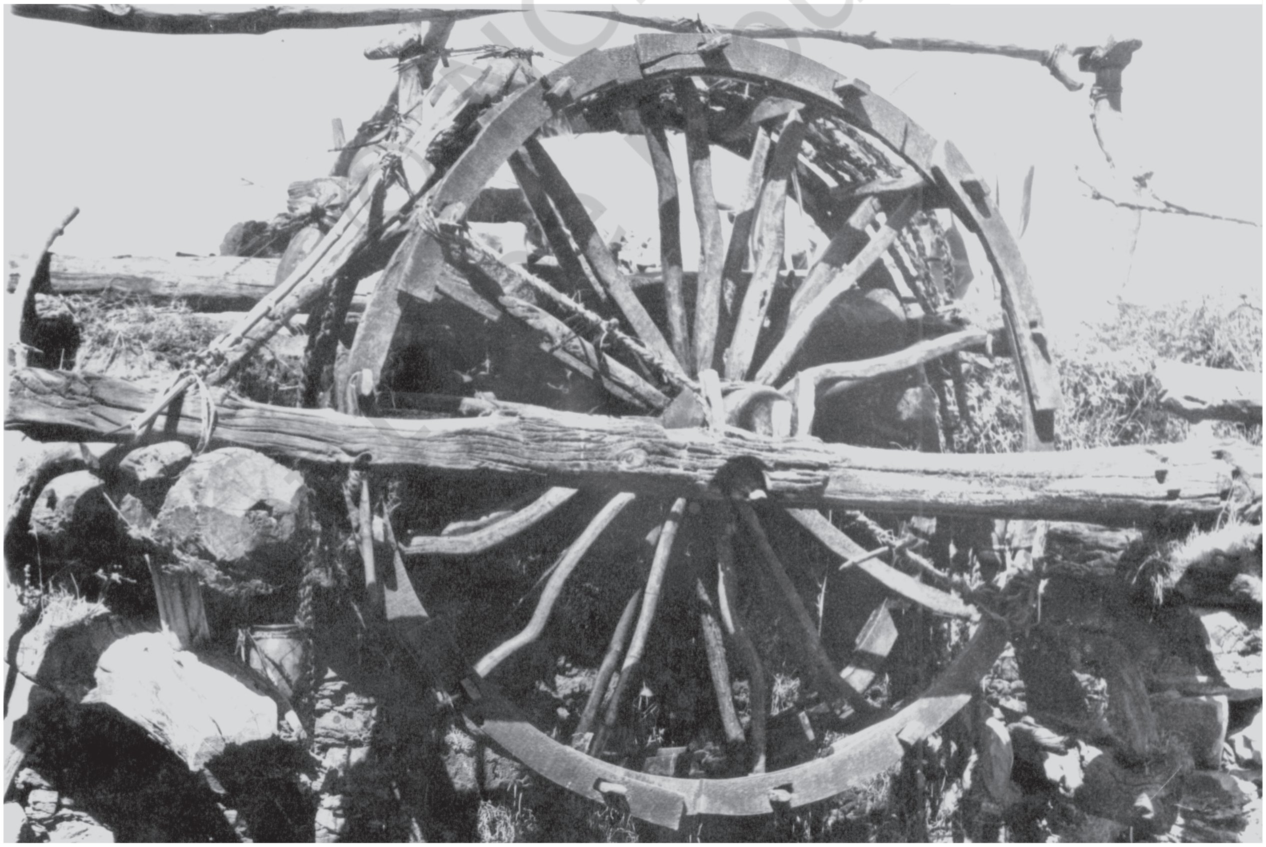

Not to be republished

समुदायों का महत्त्व बढ़ा उनमें से एक समुदाय था राजपूत, जिसका नाम 'राजपुत्र' (अर्थात् राजा का पुत्र) से निकला है। आठवीं से चौदहवीं सदी के बीच यह नाम आमतौर पर योद्धाओं के उस समूह के लिए प्रयुक्त होता था जो क्षत्रिय वर्ण के होने का दावा करते थे। 'राजपूत' शब्द के अंतर्गत केवल राजा और सामंत वर्ग ही नहीं, बल्कि वे सेनापति और सैनिक भी आते थे जो पूरे उपमहाद्वीप में अलग-अलग शासकों की सेनाओं में सेवारत थे। कवि और चारण राजपूतों की आचार संहिता–प्रबल पराक्रम और स्वामिभक्ति–का गुणगान करते थे। इस युग में राजनीतिक दृष्टि से महत्त्व हासिल करने के अवसरों का लाभ मराठा, सिक्ख, जाट, अहोम और कायस्थ (मुख्यतः लिपिकों और मुंशियों का कार्य करने वाली जाति) आदि समूहों ने भी उठाया।

इस पूरे काल के दौरान क्रमशः जंगलों की कटाई हो रही थी और खेती का इलाका बढ़ता जा रहा था। कुछ क्षेत्रों में यह परिवर्तन अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से और पूरे तौर पर हुआ। **पर्यावास** में परिवर्तन के कारण कई वनवासियों को मजबूर होकर अपना स्थान छोड़ना पड़ा। कुछ और वनवासी ज़मीन की जुताई करने लगे और कृषक बन गए। कृषकों के ये नए समूह क्षेत्रीय बाज़ार, मुखियाओं, पुजारियों, मठों और मंदिरों से प्रभावित होने लगे। वे बड़े और जटिल समाजों के अंग बन गए। उन्हें कर चुकाने पड़ते थे और स्थानीय मालिक वर्ग की बेगार करनी पड़ती थी। परिणामस्वरूप किसानों के बीच आर्थिक और सामाजिक अंतर उभरने लगे। कुछ के पास ज़्यादा उपजाऊ ज़मीन होती थी, कुछ लोग मवेशी भी पालते थे और कुछ लोग खेती से खाली समय में दस्तकारी आदि का कुछ काम कर लेते थे। जैसे-जैसे समाज में अंतर बढ़ने लगे, लोग जातियों और उपजातियों में बाँटे जाने लगे और उनकी पृष्ठभूमि और व्यवसाय के आधार पर उन्हें समाज में ऊँचा या नीचा दर्जा दिया जाने लगा। ये दर्जे स्थायी नहीं थे। किसी जाति विशेष के सदस्यों के हाथों में कितनी सत्ता, प्रभाव और संसाधनों का नियंत्रण है, इसके आधार पर उसके दर्जे बदलते रहते थे। एक ही जाति का किसी क्षेत्र में कोई दर्जा हो सकता था, और किसी अन्य क्षेत्र में कोई और।

अपने सदस्यों के व्यवहार का नियंत्रण करने के लिए जातियाँ स्वयं अपने-अपने नियम बनाती थीं। इन नियमों का पालन जाति के बड़े-बुज़ुर्गों की एक सभा करवाती थी जिसे कुछ इलाकों में 'जाति पंचायत' कहा जाता था। लेकिन जातियों को अपने निवास के गाँवों के रिवाजों का पालन भी करना पड़ता था। इसके अलावा कई गाँवों पर मुखियाओं का शासन होता था। मिल-मिलाकर वे किसी राज्य की एक छोटी इकाई भर होती थीं।

पर्यावास
इसका तात्पर्य किसी भी क्षेत्र के पर्यावरण और वहाँ के रहने वालों की सामाजिक और आर्थिक जीवन शैली से है।

?

इस अनुभाग में जो प्रौद्योगिकीय, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन वर्णित हैं, उनमें से कौन-कौन से परिवर्तन आपकी समझ में आपके शहर या गाँव में सबसे महत्त्वपूर्ण रहे?

© NCERT not to be republished

क्षेत्र और साम्राज्य

चोल (अध्याय 2), तुग़लक़ (अध्याय 3) या मुग़ल (अध्याय 4) जैसे बड़े-बड़े राज्यों के अंतर्गत कई सारे क्षेत्र आ जाते थे। दिल्ली के सुलतान ग़यासुद्दीन बलबन (1266-1287) की प्रशंसा में एक संस्कृत प्रशस्ति (प्रशस्ति के उदाहरण के लिए अध्याय 2 देखिए) में उसे एक विशाल साम्राज्य का शासक बताया गया है जो पूर्व में बंगाल (गौड़) से लेकर पश्चिम में अफ़गानिस्तान के ग़ज़नी (गज्जन) तक फैला हुआ था, और जिसमें संपूर्ण दक्षिण भारत (द्रविड़) भी आ जाता था। गौड़, आंध्र, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लोग उसकी सेना

I सिविस्तान	VII सरसुती	XIII कड़ा	XIX गुजरात
II उच्छ	VIII कुहराम	XIV अवध	XX देवगिरी
III मुल्तान	IX हाँसी	XV बिहार	XXI तेलंगाना
IV कलानौर	X दिल्ली	XVI लखनौती	XXII तैलंग
V लाहौर	XI बदायूँ	XVII जाजनगर	XXIII द्वारसमुद्र
VI समाना	XII कन्नौज	XVIII मालवा	XXIV माबार

मानचित्र 3
मिस्र के शिहाबुद्दीन उमरी द्वारा रचित मसालिक अल-अबसर फ़ि ममालिक अल-अमसर के अनुसार मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यकाल में दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत आने वाले प्रांत।

not to be republished © NCERT

आप क्या समझते हैं, शासक ऐसे दावे क्यों करते थे?

के आगे पलायन कर जाते थे। इतिहासकार विजय अभियान के इन दावों को अतिशयोक्तिपूर्ण मानते हैं। साथ ही वे यह समझने की कोशिश में भी लगे रहते हैं कि शासक लोग इस उपमहाद्वीप के भिन्न-भिन्न भागों पर अपने अधिकार का उल्लेख क्यों करते रहते हैं।

भाषा तथा क्षेत्र

सन् 1318 में कवि अमीर ख़ुसरो ने इस बात पर गौर किया था कि

इस देश के हर क्षेत्र की एक अलग भाषा है: सिंधी, लाहौरी, काश्मीरी, द्वारसमुद्री (दक्षिण कर्नाटक में), तेलंगानी (आंध्र प्रदेश में), गूजरी (गुजरात में), मअबारी (तमिलनाडु में), गौड़ी (बंगाल में)...अवधी (पूर्वी उत्तर प्रदेश में) और हिंदवी (दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र में)।"

अमीर ख़ुसरो ने आगे बतलाया है कि इन भाषाओं के विपरीत एक भाषा संस्कृत भी है जो किसी विशेष क्षेत्र की भाषा नहीं है। यह एक प्राचीन भाषा है *"जिसे केवल ब्राह्मण जानते हैं, आम जनता नहीं।"*

अमीर ख़ुसरो द्वारा उल्लिखित भाषाओं की एक सूची बनाइए। और एक सूची उन भाषाओं के नामों की बनाइए जो उनके द्वारा उल्लिखित क्षेत्रों में आज बोली जाती हैं: जो नाम एक से हैं उन्हें रेखांकित कीजिए और जो नाम भिन्न हैं उनके चारों ओर घेरा खींच दीजिए।

क्या आपने ध्यान दिया है कि समय के साथ भाषाओं के नाम बदल गए हैं?

सन् 700 तक कई क्षेत्रों के अपने-अपने भौगोलिक आयाम तय हो चुके थे और उनकी अपनी भाषा तथा सांस्कृतिक विशेषताएँ स्पष्ट हो गई थीं। अध्याय 7 में आपको इनके बारे में और अधिक जानकारी मिलेगी। ये क्षेत्र, विशेष शासक राजवंशों से भी जुड़ गए थे। इन राज्यों के बीच काफ़ी टकराहटें चलती रहती थीं। कभी-कभी चोल, ख़लजी, तुग़लक़ और मुग़ल जैसे राजवंश अनेक क्षेत्रों में फैला एक विशाल साम्राज्य भी खड़ा कर लेते थे। ये सभी साम्राज्य समान रूप से स्थिर या सफल नहीं हो पाते थे।

अठारहवीं सदी में मुग़ल वंश पतन के ढलान पर था। फलस्वरूप क्षेत्रीय राज्य फिर से उभरने लगे (अध्याय 8)। लेकिन वर्षों से जो सर्वक्षेत्रीय साम्राज्यों का शासन चल रहा था उससे क्षेत्रों की प्रकृति बदल गई थी। उन पर कई छोटे-बड़े राज्यों का शासन चलता रहा था और उन राज्यों की बहुत-सी बातें इस उपमहाद्वीप के अधिकतर भाग पर फैले इन क्षेत्रों को विरासत में मिली थीं। इस तथ्य का पता हमें उन कई परंपराओं से लगता है जो इन क्षेत्रों में उभरी थीं। इन परंपराओं में कुछ एक-दूसरी से भिन्न और कुछ एक समान हैं। ऐसी परंपराएँ हमें प्रशासन, अर्थव्यवस्था के प्रबंधन, उच्च संस्कृति तथा भाषा के संदर्भ में मिलती हैं। सन् 700 से लेकर 1750 के बीच के हज़ार वर्षों में इन विभिन्न क्षेत्रों की प्रकृति एक-दूसरे से कटकर अलग-अलग नहीं पनपी थीं। हालाँकि उनके चरित्र की अपनी विशिष्टताएँ बनी रही थीं, मगर समन्वय की सर्वक्षेत्रीय ताकतों का प्रभाव भी उन पर पड़ा था।

पुराने और नए धर्म

इतिहास के जिन हज़ार वर्षों की पड़ताल हम कर रहे हैं, इनके दौरान धार्मिक परंपराओं में कई बड़े परिवर्तन आए। दैविक तत्त्व में लोगों की आस्था कभी-कभी बिल्कुल ही वैयक्तिक स्तर पर होती थी मगर आम तौर पर इस आस्था का स्वरूप सामूहिक होता था। किसी दैविक तत्त्व में सामूहिक आस्था, यानि धर्म, प्रायः स्थानीय समुदायों के सामाजिक और आर्थिक संगठन से संबंधित होती थी। जैसे-जैसे इन समुदायों का सामाजिक संसार बदलता गया वैसे ही इनकी आस्थाओं में भी परिवर्तन आता गया।

आज हम जिसे हिंदू धर्म कहते हैं, उसमें भी इसी युग में महत्त्वपूर्ण बदलाव आए। इन परिवर्तनों में से कुछ थे–नए देवी-देवताओं की पूजा, राजाओं द्वारा मंदिरों का निर्माण और समाज में पुरोहितों के रूप में ब्राह्मणों का बढ़ता महत्त्व तथा बढ़ती सत्ता आदि।

संस्कृत ग्रंथों के ज्ञान के कारण समाज में ब्राह्मणों का बड़ा आदर होता था। इनके **संरक्षक** थे, नए-नए शासक जो स्वयं प्रतिष्ठा की चाह में थे। इन संरक्षकों का समर्थन होने के कारण समाज में इनका दबदबा और भी बढ़ गया था।

?

पता लगाइए कि क्या आपका राज्य कभी इन सर्वक्षेत्रीय साम्राज्यों का हिस्सा रहा था? यदि रहा था, तो कितने समय तक?

?

क्या आपको संस्कृत, ज्ञान एवं ब्राह्मणों के बारे में अमीर ख़ुसरो की टिप्पणियाँ याद हैं?

संरक्षक

कोई प्रभावशाली, धनी व्यक्ति जो किसी कलाकार, शिल्पकार विद्वान या अभिजात जैसे किसी अन्य व्यक्ति को मदद या सहारा दे।

© NCERT not to be republished

इस युग में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भक्ति की अवधारणा के रूप में आया। इसमें ईश्वर की कल्पना एक ऐसे प्रेमल ईष्ट देवी-देवता के रूप में की गई थी जिस तक पुजारियों के विशद कर्मकांड के बिना ही भक्त स्वयं पहुँच सकें। इस विषय में, और साथ ही दूसरी परंपराओं के बारे में आपको अध्याय 6 में जानकारी मिलेगी।

यही वह युग था जिसमें इस उपमहाद्वीप में नए-नए धर्मों का भी आगमन हुआ। कुरान शरीफ़ का संदेश भारत में पहले-पहल सातवीं सदी में व्यापारियों और आप्रवासियों के जरिए पहुँचा। मुसलमान, क़ुरान शरीफ़ को अपना धर्मग्रंथ मानते हैं, केवल एक ईश्वर–अल्लाह–की सत्ता को स्वीकार करते हैं जिसका प्रेम, करुणा और उदारता अपने में आस्था रखने वाले हर व्यक्ति को गले लगाता है चाहे उस व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि कुछ भी रही हो।

कई शासक इस्लाम और इसके विद्वान धर्मशास्त्रियों और न्याय-शास्त्रियों अर्थात् उलेमा को संरक्षण देते थे। हिंदू धर्म की ही भाँति इस्लाम के अनुयायी भी अपने धर्म की अलग-अलग तरह से व्याख्या करते थे। मुसलमानों में कुछ शिया थे जो पैगंबर साहब के दामाद अली को मुसलमानों का विधिसम्मत नेता मानते थे, और कुछ सुन्नी थे जो खलीफ़ाओं के प्रभुत्व को स्वीकार करते थे। इस्लाम के आरंभिक दौर में इस धर्म का नेतृत्व करने वाले खलीफ़ा कहलाते थे और आगे भी इनकी परंपरा चलती रही। इस्लामी न्याय सिद्धांत (विशेषकर भारत में हनफ़ी और शफ़ी ऐसे सिद्धांत हैं) की विभिन्न परंपराओं में भी कई महत्त्वपूर्ण अंतर रहे हैं। ऐसे ही धर्म-सिद्धांतों तथा रहस्यवादी विचारों को लेकर विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।

समय और इतिहास के कालखंडों पर विचार

इतिहासकार समय को केवल घड़ी या कैलेंडर की तरह नहीं देखते यानी कि केवल घंटों, दिन या वर्षों के बीतने के रूप में ही नहीं देखते हैं। उनका नज़रिया यह है कि समय सामाजिक और आर्थिक संगठन में आने वाले परिवर्तनों को झलकाता है, यह दिखलाता है कि विचारों और विश्वासों में कितना स्थायित्व रहा है और कितना परिवर्तन आया है। यदि अतीत को समान विशेषता रखनेवाले कुछ बड़े-बड़े हिस्सों–युगों या कालों–में बाँट दिया जाए तो समय का अध्ययन कुछ आसान हो जाता है।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में अंग्रेज़ इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को तीन युगों में बाँटा थाः 'हिंदू', 'मुसलिम' और 'ब्रिटिश'। यह विभाजन

© NCERT not to be republished

इस विचार पर आधारित था कि शासकों का धर्म ही एकमात्र महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन होता है और अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति में और कोई भी महत्त्वपूर्ण बदलाव नहीं आता। इस दृष्टिकोण में इस उपमहाद्वीप की अपार विविधता की भी उपेक्षा हो जाती थी।

इस काल विभाजन को आज बहुत कम इतिहासकार ही स्वीकार करते हैं। अधिकतर इतिहासकार आर्थिक तथा सामाजिक कारकों के आधार पर ही अतीत के विभिन्न कालखंडों की विशेषताएँ तय करते हैं। पिछले साल आपने जो इतिहास पढ़े थे उसमें प्राचीन समाजों के कई प्रकारों का समावेश था– जैसे शिकारी-संग्राहक, प्रारंभिक दौर के कृषिकर्मी, शहरों और गाँवों के निवासी और प्रारंभिक दौर के राज्य और साम्राज्य। इस साल आप जो इतिहास पढ़ेंगे उसे प्रायः मध्यकालीन इतिहास कहा जाता है। इसमें आपको कृषक समाजों के विस्तार, क्षेत्रीय और साम्राज्यिक राज्यों के उदय, कभी-कभी तो ग्रामवासियों और वनवासियों की कीमत पर, प्रधान धर्मों के रूप में हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म के विकास और यूरोप से व्यापारी कंपनियों के आगमन के बारे में और विस्तार से जानकारी मिलेगी।

भारत के इतिहास के ये हज़ार साल अनेक बदलावों के साक्षी रहे हैं। आखिर, सोलहवीं और अठारहवीं शताब्दियाँ आठवीं या ग्यारहवीं शताब्दियों से काफ़ी भिन्न थीं। इसलिए इस सारे काल को एक ऐतिहासिक इकाई के रूप में देखना समस्याओं से खाली नहीं है। फिर, 'मध्यकाल' की तुलना प्रायः 'आधुनिक काल' से की जाती है। आधुनिकता के साथ भौतिक उन्नति और बौद्धिक प्रगति का भाव जुड़ा हुआ है। इससे आशय यह निकलता है कि मध्यकाल रूढ़िवादी था और उस दौरान कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं। लेकिन हम जानते हैं कि ऐसा नहीं था।

इन हज़ार वर्षों के दौरान इस उपमहाद्वीप के समाजों में प्रायः परिवर्तन आते रहे और कई क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था तो इतनी समृद्ध हो गई थी कि उसने यूरोप की व्यापारी कंपनियों को भी आकर्षित करना आरंभ कर दिया। इस पुस्तक को पढ़ते समय आप परिवर्तन के चिह्नों तथा यहाँ सक्रिय ऐतिहासिक प्रक्रियाओं पर ध्यान देते चलें। और, जब भी संभव हो, इस पुस्तक में आप जो पढ़ रहे हैं उसकी तुलना आप पिछले वर्ष पढ़ी हुई बातों से करने की कोशिश करें। जहाँ भी संभव हो, यह देखें कि कहाँ बदलाव हुए हैं और कहाँ नहीं, और आज अपने आस-पास की दुनिया पर नज़र डालकर भी यह देखें कि और भी क्या कुछ बदला है या वैसा ही रहा है।

© NCERT not to be republished

कल्पना करें

आप एक इतिहासकार हैं। इस अध्याय में उल्लिखित कोई एक विषय– आर्थिक, सामाजिक या राजनैतिक इतिहास–चुनिए और समझाइए कि आपके विचार में उसकी जानकारी हासिल करना क्यों दिलचस्प होगा।

बीज शब्द

पांडुलिपि
जाति
क्षेत्र
काल-विभाजन

फिर से याद करें

1. अतीत में 'विदेशी' किसे माना जाता था?

2. नीचे उल्लिखित बातें सही हैं या गलत:

   (क) सन् 700 के बाद के काल के संबंध में अभिलेख नहीं मिलते हैं।

   (ख) इस काल के दौरान मराठों ने अपने राजनीतिक महत्त्व की स्थापना की।

   (ग) कृषि-केंद्रित बस्तियों के विस्तार के साथ कभी-कभी वनवासी अपनी जमीन से उखाड़ बाहर कर दिए जाते थे।

   (घ) सुलतान ग़यासुद्दीन बलबन असम, मणिपुर तथा कश्मीर का शासक था।

3. रिक्त स्थानों को भरें:

   (क) अभिलेखागारों में ______________ रखे जाते हैं।

   (ख) ______________ चौदहवीं सदी का एक इतिहासकार था।

   (ग) _________, _________, _________, _________ और _________ इस उपमहाद्वीप में इस काल के दौरान लाई गई कुछ नई फसलें हैं।

4. इस काल में हुए कुछ प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों की तालिका दें।

5. इस काल के दौरान हुए कुछ मुख्य धार्मिक परिवर्तनों की जानकारी दें।

© NCERT not to be republished

आइए समझें

6. पिछली कई शताब्दियों में 'हिंदुस्तान' शब्द का अर्थ कैसे बदला है?
7. जातियों के मामले कैसे नियंत्रित किए जाते थे?
8. सर्वक्षेत्रीय साम्राज्य से आप क्या समझते हैं?

आइए विचार करें

9. पांडुलिपियों के उपयोग में इतिहासकारों के सामने कौन-कौन सी समस्याएँ आती हैं?
10. इतिहासकार अतीत को कालों या युगों में कैसे विभाजित करते हैं? क्या इस कार्य में उनके सामने कोई कठिनाई आती है?

आइए करके देखें

11. अध्याय में दिए गए मानचित्र 1 अथवा मानचित्र 2 की तुलना उपमहाद्वीप के आज के मानचित्र से करें। तुलना करते हुए दोनों के बीच जितनी भी समानताएँ और असमानताएँ मिलती है, उनकी सूची बनाइए।
12. पता लगाइए कि आपके गाँव या शहर में अभिलेख (रिकॉर्ड) कहाँ रखे जाते हैं। इन अभिलेखों को कौन तैयार करता है? क्या आपके यहाँ कोई अभिलेखागार है? उसकी देखभाल कौन करता है? वहाँ किस तरह के दस्तावेज़ संग्रहित हैं? उनका उपयोग कौन लोग करते हैं?

© NCERT not to be republished

2 राजा और उनके राज्य

सातवीं शताब्दी के बाद कई राजवंशों का उदय हुआ। मानचित्र 1 में उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में सातवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच शासन करनेवाले प्रमुख राजवंशों को दिखलाया गया है।

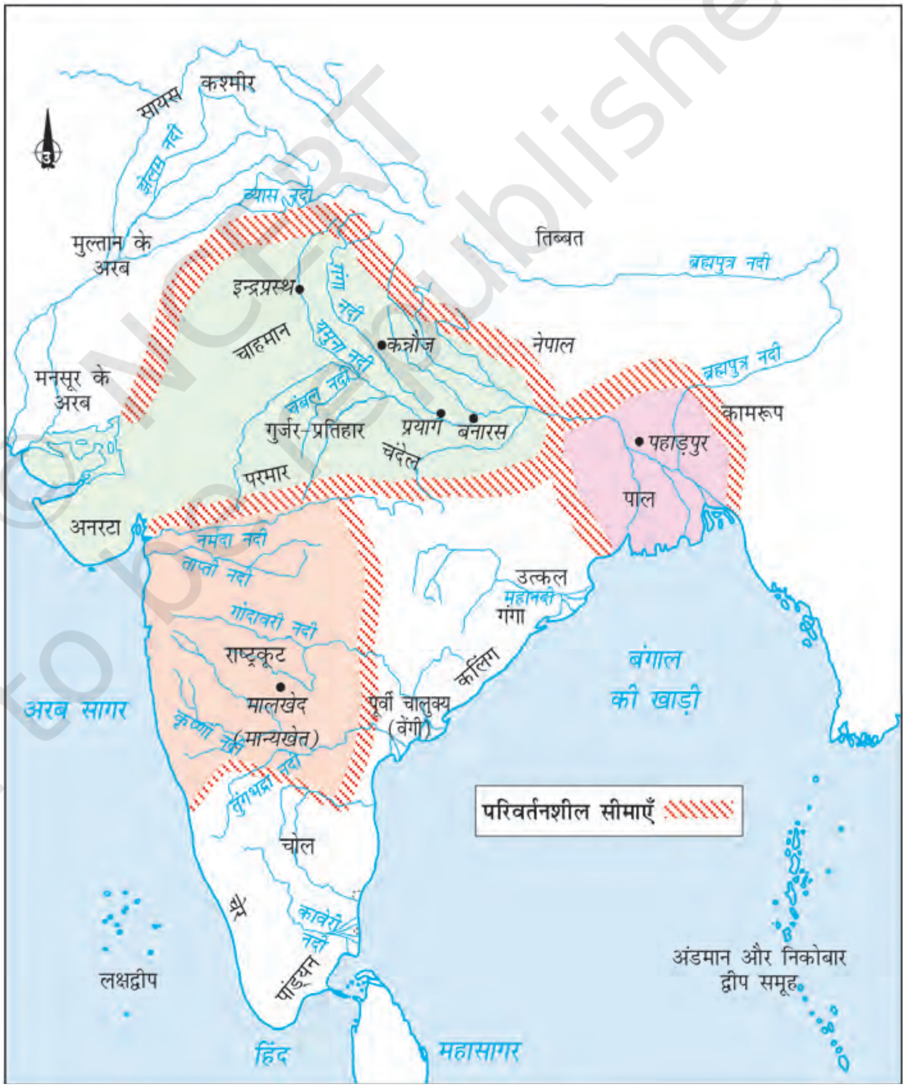

मानचित्र 1
सातवीं-बारहवीं शताब्दियों के प्रमुख राज्य

?

मानचित्र में गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट, पाल, चोल और चाहमानों (चौहानों) के स्थान का निर्धारण कीजिए। क्या आप आज के उन राज्यों की पहचान कर सकते हैं, जिन पर उनका नियंत्रण था?

© NCERT not to be republished

नए राजवंशों का उदय

सातवीं सदी आते-आते उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में बड़े भूस्वामी और योद्धा-सरदार अस्तित्व में आ चुके थे। राजा लोग प्रायः उन्हें अपने मातहत या सामंत के रूप में मान्यता देते थे। उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे राजा या स्वामी के लिए उपहार लाएँ, उनके दरबार में हाजिरी लगाएँ और उन्हें सैन्य सहायता प्रदान करें। अधिक सत्ता और संपदा हासिल करने पर सामंत अपने-आप को महासामंत, महामंडलेश्वर (पूरे मंडल का महान स्वामी) इत्यादि घोषित कर देते थे। कभी-कभी वे अपने स्वामी के आधिपत्य से स्वतंत्र हो जाने का दावा भी करते थे।

इस तरह का एक उदाहरण दक्कन में राष्ट्रकूटों का था। शुरुआत में वे कर्नाटक के चालुक्य राजाओं के अधीनस्थ थे। आठवीं सदी के मध्य में एक राष्ट्रकूट प्रधान दंतीदुर्ग ने अपने चालुक्य स्वामी की अधीनता से इंकार कर दिया, उसे हराया और हिरण्यगर्भ (शाब्दिक अर्थ– सोने का गर्भ) नामक एक अनुष्ठान किया। जब यह अनुष्ठान ब्राह्मणों की सहायता से संपन्न किया जाता था, तो यह माना जाता था कि इससे याजक, जन्मना क्षत्रिय न होते हुए भी क्षत्रिय के रूप में दुबारा क्षत्रियत्व प्राप्त कर लेगा।

कुछ अन्य उदाहरणों में उद्यमी परिवारों के पुरुषों ने अपनी राजशाही कायम करने के लिए सैन्य-कौशल का इस्तेमाल किया। मिसाल के तौर पर, कदंब मयूरशर्मण और गुर्जर-प्रतिहार हरिचंद्र ब्राह्मण थे, जिन्होंने अपने परंपरागत पेशे को छोड़कर शस्त्र को अपना लिया और क्रमशः कर्नाटक और राजस्थान में अपने राज्य सफलतापूर्वक स्थापित किए।

राज्यों में प्रशासन

इन नए राजाओं में से कइयों ने महाराजाधिराज (राजाओं के राजा), त्रिभुवन-चक्रवर्तिन (तीन भुवनों का स्वामी) और इसी तरह की अन्य भारी-भरकम उपाधियाँ धारण कीं। लेकिन, इस तरह के दावों के बावजूद, वे अपने सामंतों और साथ-ही-साथ किसान, व्यापारी तथा ब्राह्मणों के संगठनों के साथ अपनी सत्ता की साझेदारी करते थे।

चित्र 1
एलोरा की गुफा 15 का भित्तिचित्र, जिसमें विष्णु को नरसिंह अर्थात् पुरुष-सिंह के रूप में दिखलाया गया है। यह राष्ट्रकूट काल की कृति है।

?

क्या आपके विचार में उस दौर में एक शासक बनने के लिए क्षत्रिय के रूप में पैदा होना महत्त्वपूर्ण था?

2024-25

इन सभी राज्यों में उत्पादकों अर्थात् किसानों, पशुपालकों, कारीगरों से संसाधन इकट्ठे किए जाते थे। इनको अकसर अपने उत्पादों का एक हिस्सा त्यागने के लिए मनाया या बाध्य किया जाता था। कभी-कभी इस हिस्से को 'लगान' मानकर वसूला जाता था क्योंकि प्राप्त करने वाला भूस्वामी होने का दावा करता था। राजस्व व्यापारियों से भी लिया जाता था।

चार सौ कर !

तमिलनाडु में शासन करनेवाले चोल वंश के अभिलेखों में विभिन्न किस्म के करों के लिए 400 से ज़्यादा सूचक शब्द मिलते हैं। सबसे अधिक उल्लिखित कर हैं *वेट्टी*, जो नकद की बजाए जबरन श्रम के रूप में लिया जाता था, यानी जबरन श्रम और *कदमाई* यानी कि भू-राजस्व थे। मकान पर छाजन डालने पर लगने वाला कर, खजूर या ताड़ के पेड़ पर चढ़ने के लिए सीढ़ी के इस्तेमाल पर लगने वाला कर, पारिवारिक संपत्ति का उत्तराधिकार हासिल करने के लिए लगने वाले कर, इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है।

? *क्या आज इनमें से कोई कर वसूले जाते हैं।*

ये संसाधन राजा की व्यवस्था का वित्तीय आधार बनते थे, साथ ही मंदिरों और दुर्गों के निर्माण में भी इस्तेमाल होते थे। संसाधन उन युद्धों को लड़ने में भी इस्तेमाल होते थे, जिनसे लूट की शक्ल में धन मिलने की तथा ज़मीन और व्यापारिक मार्गों के प्रयोग की संभावनाएँ बनती थीं।

राजस्व-वसूली के लिए पदाधिकारियों की नियुक्ति सामान्यतः प्रभावशाली परिवारों के बीच से ही की जाती थी और प्रायः वंशानुगत होती थीं। सेना में भी ऐसा ही होता था। कई बार राजा के निकट संबंधी ही इन ओहदों पर होते थे।

? प्रशासन का यह रूप आज की व्यवस्था से किन मायनों में भिन्न था।

प्रशस्तियाँ और भूमि-अनुदान

प्रशस्तियों में ऐसे ब्यौरे होते हैं, जो शब्दशः सत्य नहीं भी हो सकते। लेकिन ये प्रशस्तियाँ हमें बताती हैं कि शासक खुद को कैसा दर्शाना चाहते थे मिसाल के लिए शूरवीर, विजयी योद्धा के रूप में। ये विद्वान ब्राह्मणों द्वारा रची गई थीं, जो अकसर प्रशासन में मदद करते थे।

© NCERT not to be republished

नागभट्ट की 'उपलब्धियाँ'

कई शासकों ने प्रशस्तियों में अपनी उपलब्धियों का बखान किया है। (आपने पिछले साल गुप्त शासक समुद्रगुप्त की प्रशस्ति के बारे में पढ़ा है।)

संस्कृत में लिखी गई, ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में पाई गई एक प्रशस्ति में प्रतिहार नरेश, नागभट्ट के कामों का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

आंध्र, सैंधव (सिध), विदर्भ (महाराष्ट्र का एक हिस्सा) और कलिंग (उड़ीसा का एक हिस्सा) के राजा उनके आगे तभी धराशायी हो गए जब वे राजकुमार थे...

उन्होंने कन्नौज के शासक चक्रयुद्ध को विजित किया...

उन्होंने वंग (बंगाल का हिस्सा), अनर्त (गुजरात का हिस्सा), मालवा (मध्य प्रदेश का हिस्सा), किरात (वनवासी), तुरुष्क (तुर्क), वत्स, मत्स्य (दोनों उत्तर भारत के राज्य) राजाओं को पराजित किया...

?

इस अभिलेख में उल्लिखित इलाकों में से कुछ को मानचित्र 1 में ढूँढने की कोशिश करें। दूसरे राजाओं ने भी इसी तरह के दावे किए थे। आपके विचार से ऐसे दावे उन्होंने क्यों किए होंगे?

राजा लोग प्रायः ब्राह्मणों को भूमि अनुदान से पुरस्कृत करते थे। ये ताम्र पत्रों पर अभिलिखित होते थे, जो भूमि पाने वाले को दिए जाते थे।

चित्र 2

यह थोड़ा संस्कृत और थोड़ा तमिल में लिखा हुआ ताम्रपत्रों का एक संग्रह है, जिसमें नौवीं सदी में एक शासक के द्वारा दिए गए भूमि अनुदान का उल्लेख है। जिन कड़ियों से ये पत्र जुड़े हैं, उन पर राजसी मुहर लगी है, जो यह बतलाने के लिए है कि यह एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

© NCERT not to be republished

भूमि के साथ क्या-क्या दिया जाता था?

यह चोलों के द्वारा दिए गए एक भूमि अनुदान के तमिल भाग का एक अंश है:

हमने मिट्टी की मेड़ें बनाकर, साथ ही काँटेदार झाड़ियाँ लगाकर भूमि की सीमाओं को चिह्नित कर दिया है। इस भूमि पर ये चीज़ें हैं: फलदार वृक्ष, पानी, भूमि, बगीचे और फलोद्यान, पेड़, कुएँ, खुली जगह, चरागाह, एक गाँव, बाँबी, चबूतरें, नहरें, खाइयाँ, नदियाँ, दलदली ज़मीन, हौज़, अन्नागार, मछलियों के तालाब, मधुमक्खियों के छत्ते और गहरी झीलें।

जिसे यह भूमि मिलती है, वह इससे कर वसूली कर सकता है। वह न्यायाधिकारियों द्वारा जुर्माने के तौर पर लगाए गए कर वसूल सकता है, पान के पत्तों पर लगने वाला कर, बुने हुए कपड़ों पर लगने वाला कर, साथ ही साथ वाहनों पर लगनेवाला कर वसूल सकता है। वह पकी ईंटों के बने ऊपरी माले पर बड़े कमरे बनवा सकता है, बड़े और छोटे कुएँ खुदवा सकता है, पेड़ और काँटेदार झाड़ियाँ लगवा सकता है, ज़रूरी हो तो सिंचाई के लिए नहर बनवा सकता है। उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पानी बरबाद न हो और तटबंधों का निर्माण हो।

? *लेख में सिंचाई के जितने संभव स्रोतों का उल्लेख है, उनकी सूची बनाइए और विचार-विमर्श कीजिए कि इनका कैसे इस्तेमाल होता होगा।*

बारहवीं शताब्दी में एक बृहत् संस्कृत काव्य भी रचा गया, जिसमें कश्मीर पर शासन करने वाले राजाओं का इतिहास दर्ज है। इसे कल्हण नामक एक रचनाकार द्वारा रचा गया। कल्हण ने अपना वृत्तांत लिखने के लिए शिलालेखों, दस्तावेज़ों, प्रत्यक्षदर्शियों के वर्णनों और पहले के इतिहासों समेत अनेक तरह के स्रोतों का इस्तेमाल किया। प्रशस्तियों के लेखकों से भिन्न वह अकसर शासकों और उनकी नीतियों के बारे में आलोचनात्मक रुख दिखलाता है, इसलिए बारहवीं सदी के लिए यह असाधारण ग्रंथ था।

त्रिपक्षीय संघर्ष

आपने यह गौर किया होगा कि इनमें से प्रत्येक शासक राजवंश का आधार कोई क्षेत्र-विशेष था। वे दूसरे क्षेत्रों पर भी नियंत्रण करने का प्रयास करते थे। एक विशेष रूप से वांछनीय क्षेत्र था–गंगा घाटी में कन्नौज नगर।

© NCERT not to be republished

गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट और पाल वंशों के शासक सदियों तक कन्नौज के ऊपर नियंत्रण को लेकर आपस में लड़ते रहे। चूँकि इस लंबी चली लड़ाई में तीन पक्ष थे, इसलिए इतिहासकारों ने प्रायः इसकी चर्चा 'त्रिपक्षीय संघर्ष' के रूप में की है।

शासकों ने बड़े मंदिरों का निर्माण करवा कर भी अपनी सत्ता और संसाधनों का प्रदर्शन करने का प्रयास किया। इसलिए जब वे एक-दूसरे के राज्यों पर आक्रमण करते थे, तो मन्दिरों को भी अपना निशाना बनाते थे, जो कभी-कभी बहुत अधिक सम्पन्न होते थे।

अफ़गानिस्तान के ग़ज़नी का महमूद ऐसा ही एक शासक है। उसने धार्मिक पूर्वाग्रह से प्रेरित हो उपमहाद्वीप पर 17 बार (1000–1025 ई.) हमला किया। उसका निशाना थे–संपन्न मंदिर, जिनमें गुजरात का सोमनाथ मंदिर भी शामिल था। महमूद जो धन उठा ले गया, उसका बहुत बड़ा हिस्सा ग़ज़नी में एक वैभवशाली राजधानी के निर्माण में खर्च हुआ।

युद्ध करने वाले दूसरे राजाओं में चाहमान भी थे, जो बाद में चौहान के रूप में जाने गए। वे दिल्ली और अजमेर के आस-पास के क्षेत्र पर शासन करते थे। उन्होंने पश्चिम और पूर्व की ओर अपने नियंत्रण-क्षेत्र का विस्तार करना चाहा, जहाँ उन्हें गुजरात के चालुक्यों और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गहड़वालों से टक्कर लेनी पड़ी। चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय (1168–1192), जिसने सुलतान मुहम्मद गोरी नामक तुर्क शासक को 1191 में हराया, लेकिन दूसरे ही साल 1192 में उसके हाथों हार गया।

चोल राज्य – नज़दीक से एक नज़र

उरैयूर से तंजावूर तक

चोल वंश सत्ता में कैसे आया? कावेरी डेल्टा में मुट्टरियार नाम से प्रसिद्ध एक छोटे-से मुखिया परिवार की सत्ता थी। वे कांचीपुरम के पल्लव राजाओं के मातहत थे। उरइयार के चोलवंशीय प्राचीन मुखिया परिवार के विजयालय ने नौवीं सदी के मध्य में मुट्टरियारों को हरा कर इस डेल्टा पर कब्ज़ा जमाया। उसने वहाँ तंजावूर शहर और निशुम्भसूदिनी देवी का मंदिर बनवाया।

?

मानचित्र 1 को देखें और वे कारण बताइए, जिनके चलते ये शासक कन्नौज और गंगा घाटी के ऊपर नियंत्रण चाहते थे।

?

मानचित्र 1 को दोबारा देखिए और विचार-विमर्श कीजिए कि चाहमानों ने अपने इलाके का विस्तार क्यों करना चाहा होगा?

2024-25

© NCERT not to be republished

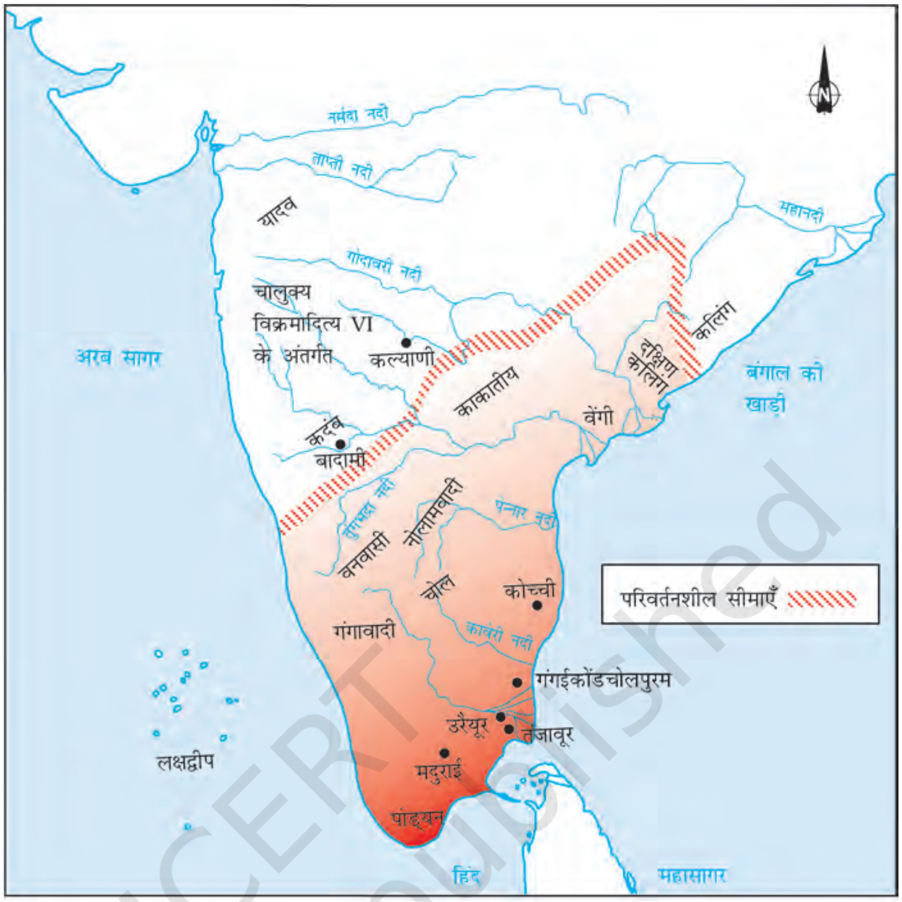

मानचित्र 2
चोल राज्य और उसके पड़ोसी

विजयालय के उत्तराधिकारियों ने पड़ोसी इलाकों को जीता और उसका राज्य अपने क्षेत्रफल तथा शक्ति, दोनों रूपों में बढ़ता गया। दक्षिण और उत्तर के पांड्यन और पल्लव के इलाके इस राज्य का हिस्सा बना लिए गए। राजराज प्रथम, जो सबसे शक्तिशाली चोल शासक माना जाता है, 985 में राजा बना और उसी ने इनमें से ज़्यादातर क्षेत्रों पर अपने नियंत्रण का विस्तार किया। उसने साम्राज्य के प्रशासन का भी पुनर्गठन किया। राजराज के पुत्र राजेंद्र प्रथम ने उसकी नीतियों को जारी रखा और उसने गंगा घाटी, श्री लंका तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों पर हमला भी किया। इन अभियानों के लिए उसने एक जलसेना भी बनाई।

भव्य मंदिर और कांस्य मूर्तिकला

राजराज और राजेंद्र प्रथम द्वारा बनवाए गए तंजावूर और गंगईकोंडचोलपुरम के बड़े मंदिर स्थापत्य और मूर्तिकला की दृष्टि से एक चमत्कार हैं।

2024-25

चित्र 3
गंगईकोंडचोलपुरम का मंदिर
छत जिस तरह से क्रमशः पतली होती गई है, उस पर गौर करें। बाहरी दीवारों को सजाने के लिए पत्थर की जो प्रतिमाएँ अलंकृत की गई हैं, उन्हें भी देखिए।

चोल मंदिर अकसर अपने आस-पास विकसित होने वाली बस्तियों के केंद्र बन गए। ये शिल्प-उत्पादन के केंद्र थे। ये मंदिर शासकों और अन्य लोगों द्वारा दी गई भूमि से भी संपन्न हो गए थे। इस भूमि की उपज उन सारे विशेषज्ञों का निर्वाह करने में खर्च होती थी, जो मंदिर के आस-पास रहते और उसके लिए काम करते थे– पुरोहित, मालाकार, बावर्ची, मेहतर, संगीतकार, नर्तक, इत्यादि। दूसरे शब्दों में, मंदिर सिर्फ़ पूजा-आराधना के स्थान नहीं थे– वे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के केंद्र भी थे। मंदिर के साथ जुड़े हुए शिल्पों में सबसे विशिष्ट था– कांस्य प्रतिमाएँ बनाने का काम। चोल कांस्य प्रतिमाएँ संसार की सबसे उत्कृष्ट कांस्य प्रतिमाओं में गिनी जाती हैं।

ज़्यादातर प्रतिमाएँ तो देवी-देवताओं की ही होती थीं, लेकिन कुछ प्रतिमाएँ भक्तों की भी बनाई गई थीं।

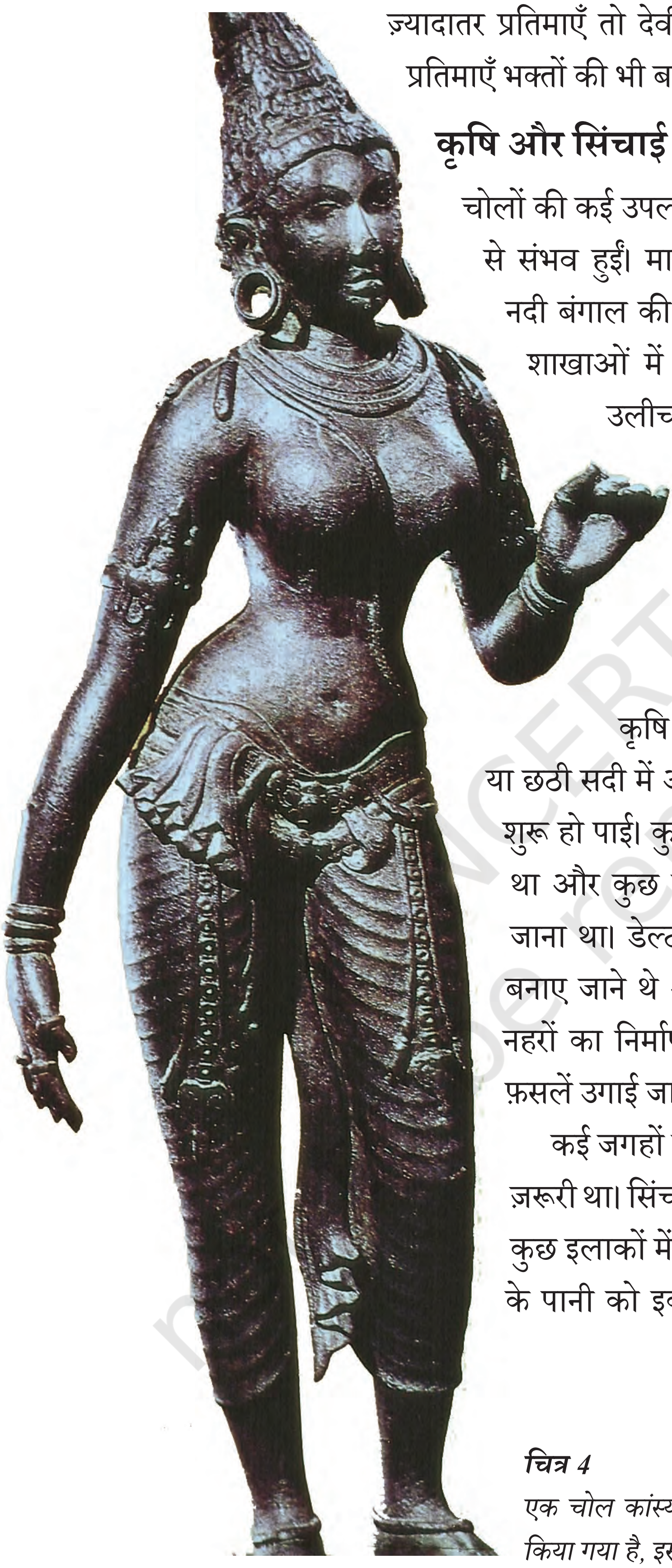

कृषि और सिंचाई

चोलों की कई उपलब्धियाँ कृषि में हुए नए विकासों के माध्यम से संभव हुईं। मानचित्र 2 देखिए। गौर कीजिए कि कावेरी नदी बंगाल की खाड़ी में मिलने से पहले कई छोटी-छोटी शाखाओं में बँट जाती है। ये शाखाएँ बार-बार पानी उलीचती हैं, जिससे किनारों पर उपजाऊ मिट्टी जमा होती रहती है। शाखाओं का पानी, कृषि, विशेषतः चावल की खेती के लिए आवश्यक आर्द्रता भी मुहैया कराता है।

हालाँकि तमिलनाडु के दूसरे हिस्सों में कृषि पहले ही विकसित हो चुकी थी, पर पाँचवी या छठी सदी में आकर ही इस इलाके में बड़े पैमाने पर खेती शुरू हो पाई। कुछ इलाकों में जंगलों को साफ़ किया जाना था और कुछ दूसरे इलाक़ों में ज़मीन को समतल किया जाना था। डेल्टा क्षेत्रों में बाढ़ को रोकने के लिए तटबंध बनाए जाने थे और पानी को खेतों तक ले जाने के लिए नहरों का निर्माण होना था। कई क्षेत्रों में एक साल में दो फ़सलें उगाई जाती थीं।

कई जगहों पर फ़सलों की सिंचाई कृत्रिम रूप से करना ज़रूरी था। सिंचाई के लिए कई पद्धतियाँ अपनाई जाती थीं। कुछ इलाकों में कुएँ खोदे गए। कुछ अन्य जगहों में बारिश के पानी को इकट्ठा करने के लिए विशाल सरोवर बनाए

चित्र 4

एक चोल कांस्य प्रतिमा। कितनी सावधानी के साथ उसे अलंकृत किया गया है, इस पर गौर कीजिए।

चित्र 5
नवीं शताब्दी तमिलनाडु का एक जलद्वार। हौज़ से नदी की शाखाओं में पानी के प्रवाह को इसके ज़रिए नियंत्रित किया जाता था। इस पानी से खेत सींचे जाते थे।
जलद्वार पारंपरिक रूप से एक लकड़ी या धातु बाधा है, जो आमतौर पर पानी के स्तर को नियंत्रित और नदियों और नहरों में दर प्रवाह को संचालित करता है।

गए। स्मरण रहे कि सिंचाई के काम में योजना की ज़रूरत होती है, जैसे– श्रम और संसाधनों को व्यवस्थित करना, इन कामों की देख-रेख करना और यह तय करना कि पानी का बँटवारा कैसे किया जाए। ज़्यादातर नए शासकों, साथ-ही-साथ गाँवों में रहनेवाले लोगों ने इन गतिविधियों में सक्रिय रूप से दिलचस्पी दिखलाई।

साम्राज्य का प्रशासन

प्रशासन किस प्रकार संगठित था? किसानों की बस्तियाँ, जो 'उर' कहलाती थीं, सिंचित खेती के साथ बहुत समृद्ध हो गई थीं। इस तरह के गाँवों के समूह को 'नाडु' कहा जाता था। ग्राम परिषद् और नाडु, न्याय करने और कर वसूलने जैसे कई प्रशासकीय कार्य करते थे।

धनी किसानों को केंद्रीय चोल सरकार की देख-रेख में 'नाडु' के काम-काज में अच्छा-ख़ासा नियंत्रण हासिल था। उनमें से कई धनी भूस्वामियों को चोल राजाओं ने सम्मान के रूप में 'मुवेंदवेलन' (तीन राजाओं को अपनी सेवाएँ प्रदान करने वाला वेलन या किसान), 'अरइयार' (प्रधान) जैसी उपाधियाँ दीं और उन्हें केंद्र में महत्त्वपूर्ण राजकीय पद सौंपे।

भूमि के प्रकार

चोल अभिलेखों में भूमि की विभिन्न कोटियों का उल्लेख मिलता है।

वेल्लनवगाई
गैर-ब्राह्मण किसान स्वामी की भूमि

ब्रह्मदेय
ब्राह्मणों को उपहार में दी गई भूमि

शालाभोग
किसी विद्यालय के रखरखाव के लिए भूमि

देवदान, *तिरुनमट्टक्कनी*
मंदिर को उपहार में दी गई भूमि

पल्लिच्चंदम
जैन संस्थानों को दान दी गई भूमि

हमने देखा है कि ब्राह्मणों को समय-समय पर भूमि-अनुदान या ब्रह्मदेय प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप कावेरी घाटी और दक्षिण भारत के दूसरे हिस्सों में ढेरों ब्राह्मण बस्तियाँ अस्तित्व में आईं।

प्रत्येक ब्रह्मदेय की देख-रेख प्रमुख ब्राह्मण भूस्वामियों की एक सभा द्वारा की जाती थी। ये सभाएँ बहुत कुशलतापूर्वक काम करती थीं। इनके निर्णय, शिलालेखों में प्रायः मंदिरों की पत्थर की दीवारों पर, ब्यौरेवार दर्ज किए जाते थे। 'नगरम' के नाम से ज्ञात व्यापारियों के संघ भी अकसर शहरों में प्रशासनिक कार्य संपादित करते थे।

तमिलनाडु के चिंगलपुट ज़िले के उत्तरमेरुर से प्राप्त अभिलेखों में इस बात का सविस्तार वर्णन है कि ब्राह्मणों की सभा का संगठन कैसा था। सिंचाई के कामकाज, बाग-बगीचों, मंदिरों इत्यादि की देख-रेख के लिए सभा में विभिन्न समितियाँ होती थीं। इनमें सदस्यता के लिए जो लोग योग्य होते थे, उनके नाम तालपत्र के छोटे टिकटों पर लिखे जाते थे और मिट्टी के बर्तन में रख दिए जाते थे और किसी छोटे लड़के को हर समिति के लिए एक के बाद एक टिकट निकालने के लिए कहा जाता था।

© NCERT not to be republished

अभिलेख और लिखित सामग्री

उत्तरमेरुर अभिलेख के अनुसार सभा की सदस्यता:

सभा की सदस्यता के लिए इच्छुक लोगों को ऐसी भूमि का स्वामी होना चाहिए, जहाँ से भू-राजस्व वसूला जाता है।

उनके पास अपना घर होना चाहिए।

उनकी उम्र 35 से 70 के बीच होनी चाहिए।

उन्हें वेदों का ज्ञान होना चाहिए।

उन्हें प्रशासनिक मामलों की अच्छी जानकारी होनी चाहिए और ईमानदार होना चाहिए।

यदि कोई पिछले तीन सालों में किसी समिति का सदस्य रहा है तो वह किसी और समिति का सदस्य नहीं बन सकता।

जिसने अपने या अपने संबंधियों के खाते जमा नहीं कराए हैं, वह चुनाव नहीं लड़ सकता।

अभिलेखों में राजाओं और शक्तिसंपन्न पुरुषों के बारे में तो जानकारी मिलती है, लेकिन यह जानना खासा मुश्किल है कि साधारण मर्दों और औरतों का जीवन इन राज्यों में कैसा था? बारहवीं शताब्दी की तमिल कृति, *पेरियापूरणम* से एक उद्धरण—

अडनूर की सरहदों पर फूस की पुरानी छाजनों वाली छोटी-छोटी झोंपड़ियों से अँटा पड़ा 'पुलाया' (एक ऐसा समूह, जिसे ब्राह्मण और वेल्लाल प्रतिष्ठित समाज के बाहर मानते थे) लोगों का एक छोटा-सा पुरवा था, जिसमें ओछे किस्म के पेशों में लगे खेतिहर मज़दूर रहते थे। चमड़े की पट्टियों से घिरे हुए झोंपड़ियों के अहातों में छोटे मुर्गे-मुर्गियाँ झुंडों में घूमते रहते थे। गहरे रंग के बच्चे, जो काले लोहे के कंगन पहने हुए थे, छोटे पिल्लों को उठाए उछलते चल रहे थे।... मारूद् पेड़ों की छाया में एक मज़दूरनी ने अपने बच्चे को चमड़े की एक चादर पर सुला दिया। आम के पेड़ भी थे, जिनकी शाखाओं पर नगाड़े लटके हुए थे और नारियल के पेड़ों के नीचे ज़मीन में बने छोटे गड्ढ़ों में छोटे सिरों वाली कुतियाँ पिल्लों को दूध पिलाने के बाद लेटी हुई थीं। लाल कलगी वाले मुर्गों ने पौ फटने से पहले तगड़े पुलैयार (पुलाया का बहुवचन) को दिन के काम पर जाने की हाँक लगाते हुए बाँग दे दी। धान कूटती लहरदार बालोंवाली पुलाया स्त्रियों के गाने की आवाज़ रोज़ाना कांजी वृक्ष की छाया में फैलती थी।...

?

क्या आपको लगता है कि महिलाएँ इन सभाओं में हिस्सेदारी करती थीं? क्या आप समझते हैं कि समितियों के सदस्यों के चुनाव के लिए लॉटरी का तरीका उपयोगी होता है?

?

क्या इस पुरवे में कुछ ब्राह्मण थे? जितनी तरह की गतिविधियाँ चल रही थीं, उनका वर्णन करें। आपके ख्याल से अभिलेखों में इन सबका उल्लेख क्यों नहीं किया गया है?

© NCERT not to be republished

कल्पना कीजिए

आप एक सभा के चुनाव में मौजूद हैं। जो कुछ आप देख और सुन रहे हैं उसका वर्णन कीजिए।

फिर से याद करें

1. जोड़े बनाओ:

गुर्जर-प्रतिहार	पश्चिमी दक्कन
राष्ट्रकूट	बंगाल
पाल	गुजरात और राजस्थान
चोल	तमिलनाडु

2. 'त्रिपक्षीय संघर्ष' में लगे तीनों पक्ष कौन-कौन से थे?
3. चोल साम्राज्य में सभा की किसी समिति का सदस्य बनने के लिए आवश्यक शर्तें क्या थीं?
4. चाहमानों के नियंत्रण में आनेवाले दो प्रमुख नगर कौन-से थे?

आइए समझें

5. राष्ट्रकूट कैसे शक्तिशाली बने?
6. नये राजवंशों ने स्वीकृति हासिल करने के लिए क्या किया?
7. तमिल क्षेत्र में किस तरह की सिंचाई व्यवस्था का विकास हुआ?
8. चोल मंदिरों के साथ कौन-कौन सी गतिविधियाँ जुड़ी हुई थीं?

बीज शब्द

सामंत
मंदिर
नाडु
सभा

© NCERT not to be republished

आइए विचार करें

9. मानचित्र 1 को दुबारा देखें और तलाश करें कि जिस प्रांत में आप रहते हैं, उसमें कोई पुरानी राजशाहियाँ (राजाओं के राज्य) थीं या नहीं?

10. जिस तरह के पंचायती चुनाव हम आज देखते हैं, उनसे उत्तरमेरुर के 'चुनाव' किस तरह से अलग थे?

आइए करके देखें

11. इस अध्याय में दिखलाए गए मंदिरों से अपने आस-पास के किसी मौजूदा मंदिर की तुलना करें और जो समानताएँ या अंतर आप देख पाते हैं, उन्हें बताएँ।

12. आज के समय में वसूले जाने वाले करों के बारे में और जानकारी हासिल करें। क्या ये नकद के रूप में हैं, वस्तु के रूप में हैं या श्रम सेवाओं के रूप में?

© NCERT not to be republished

3 दिल्लीः बारहवीं से पंद्रहवीं शताब्दी

0761CH03

हमने अध्याय 2 में देखा कि कावेरी डेल्टा जैसे क्षेत्र बड़े राज्यों के केंद्र बन गये थे। क्या आपने गौर किया कि अध्याय 2 में ऐसे किसी राज्य का ज़िक्र नहीं है जिसकी राजधानी दिल्ली रही हो? इसकी वजह यह है कि दिल्ली महत्त्वपूर्ण शहर बारहवीं शताब्दी में ही बना।

तालिका 1 पर नज़र डालिए। पहले पहल तोमर राजपूतों के काल में दिल्ली किस साम्राज्य की राजधानी बनी। बारहवीं सदी के मध्य में तोमरों को अजमेर के चौहानों (जिन्हें चाहमान नाम से भी जाना जाता है) ने परास्त किया। तोमरों और चौहानों के राज्यकाल में ही दिल्ली वाणिज्य का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया। इस शहर में बहुत सारे समृद्धिशाली जैन व्यापारी रहते थे जिन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया। यहाँ *देहलीवाल* कहे जाने वाले सिक्के भी ढाले जाते थे जो काफ़ी प्रचलन में थे।

_मानचित्र 1_
तेरहवीं-चौदहवीं सदी में दिल्ली सल्तनत के कुछ चुने हुए शहर।

तेरहवीं सदी के आरंभ में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई और इसके साथ दिल्ली एक ऐसी राजधानी में बदल गई जिसका नियंत्रण इस उपमहाद्वीप के बहुत बड़े क्षेत्र पर फैला था। तालिका 1 पर फिर से नज़र डालिए और उन पाँच वंशों की पहचान कीजिए जिनसे मिलकर दिल्ली की सल्तनत बनी।

जिस इलाके को हम आज दिल्ली के नाम से जानते हैं, वहाँ इन सुलतानों ने अनेक नगर बसाए। मानचित्र 1 को देखकर देहली-ए कुहना, सीरी और जहाँपनाह को पहचानिए।

© NCERT not to be republished

तालिका 1

दिल्ली के शासक

राजपूत वंश	
तोमर	**आरंभिक बारहवीं शताब्दी–1165**
अनंगपाल	1130–1145
चौहान	**1165–1192**
पृथ्वीराज चौहान	1175–1192
प्रारंभिक तुर्की शासक	**1206–1290**
क़ुत्बउद्दीन ऐबक	1206–1210
शमसुद्दीन इल्तुतमिश	1210–1236
रज़िया	1236–1240
ग़यासुद्दीन बलबन	1266–1287
ख़लजी वंश	**1290–1320**
जलालुद्दीन ख़लजी	1290–1296
अलाउद्दीन ख़लजी	1296–1316
तुग़लक वंश	**1320–1414**
गयासुद्दीन तुग़लक़	1320–1324
मुहम्मद तुग़लक़	1324–1351
फिरोज़ शाह तुग़लक़	1351–1388
सैयद वंश	**1414–1451**
खिज्र ख़ान	1414–1421
लोदी वंश	**1451–1526**
बहलोल लोदी	1451–1489

© NCERT not to be republished

सुलतानों के अधीन दिल्ली

'इतिहास', तारीख (एकवचन)/तवारीख (बहुवचन) हैं जो सुलतानों के शासनकाल में, प्रशासन की भाषा फ़ारसी में लिखे गए थे।

तवारीख के लेखक सचिव, प्रशासक, कवि और दरबारियों जैसे सुशिक्षित व्यक्ति होते थे जो घटनाओं का वर्णन भी करते थे और शासकों को प्रशासन संबंधी सलाह भी देते थे। वे न्यायसंगत शासन के महत्त्व पर बल देते थे।

न्याय-चक्र

तेरहवीं सदी के इतिहासकार फ़ख्र-ए मुदब्बिर ने लिखा था:

राजा का काम सैनिकों के बिना नहीं चल सकता। सैनिक वेतन के बिना नहीं जी सकते। वेतन आता है किसानों से एकत्रित किए गए राजस्व से। मगर किसान भी राजस्व तभी चुका सकेंगे, जब वे खुशहाल और प्रसन्न हों। ऐसा तभी हो सकता है, जब राजा न्याय और ईमानदार प्रशासन को बढ़ावा दे।

ये कुछ और बातें ध्यान में रखें: (1) तवारीख के लेखक नगरों में (विशेषकर दिल्ली में) रहते थे, गाँव में शायद ही कभी रहते हों। (2) वे अकसर अपने इतिहास सुलतानों के लिए, उनसे ढेर सारे इनाम-इकराम पाने की आशा में लिखा करते थे। (3) ये लेखक अकसर शासकों को **जन्मसिद्ध अधिकार** और **लिंगभेद** पर आधारित 'आदर्श' समाज व्यवस्था बनाए रखने की सलाह देते थे। उनके विचारों से सारे लोग सहमत नहीं होते थे।

सन् 1236 में सुलतान इल्तुतमिश की बेटी रज़िया सिंहासन पर बैठी। उस युग के इतिहासकार मिन्हाज-ए-सिराज ने स्वीकार किया है कि वह अपने सभी भाइयों से अधिक योग्य और सक्षम थी, लेकिन फिर भी वह एक रानी को शासक के रूप में मान्यता नहीं दे पा रहा था। दरबारी जन भी उसके स्वतंत्र रूप से शासन करने की कोशिशों से प्रसन्न नहीं थे। सन् 1240 में उसे सिंहासन से हटा दिया गया।

?

क्या आपको लगता है कि न्याय-चक्र राजा और प्रजा के बीच के संबंध को समझाने के लिए उपयुक्त शब्द है?

जन्मसिद्ध अधिकार

जन्म के आधार पर विशेषाधिकार का दावा। उदाहरण के लिए, लोग मानते थे कि कुलीन व्यक्तियों को, कुछ खास परिवारों में जन्म लेने के कारण शासन करने का अधिकार विरासत में मिलता है।

लिंगभेद

स्त्रियों तथा पुरुषों के बीच सामाजिक तथा शरीर-रचना संबंधी अंतर। आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि ऐसे अंतर के कारण पुरुष स्त्रियों की तुलना में श्रेष्ठ होते हैं।

© NCERT not to be republished

रज़िया के विषय में मिन्हाज के विचार:अन्य महत्वपूर्ण भारतीय शासिकाओं ने क्या किया ?

मिन्हाज-ए-सिराज का सोचना था कि ईश्वर ने जो आदर्श समाज व्यवस्था बनाई है उसके अनुसार स्त्रियों को पुरुषों के अधीन होना चाहिए और रानी का शासन इस व्यवस्था के विरुद्ध जाता था। इसलिए वह पूछता है: "खुदा की रचना के खाते में उसका ब्यौरा चूँकि मर्दों की सूची में नहीं आता, इसलिए इतनी शानदार खूबियों से भी उसे आखिर हासिल क्या हुआ?"

रज़िया ने अपने अभिलेखों और सिक्कों पर अंकित करवाया कि वह सुलतान इल्तुतमिश की बेटी थी। आधुनिक आंध्र प्रदेश के वारंगल क्षेत्र में किसी समय काकतीय वंश का राज्य था। उस वंश की रानी रुद्रम्मा देवी (1262–1289) के व्यवहार से रजिया का व्यवहार बिलकुल विपरीत था। रुद्रम्मा देवी ने अपने अभिलेखों में अपना नाम पुरुषों जैसा लिखवाकर अपने पुरुष होने का भ्रम पैदा किया था। एक और महिला शासक थी–कश्मीर की रानी दिद्दा (980–1003)। उनका नाम 'दीदी' (बड़ी बहन) से निकला है। ज़ाहिर है प्रजा ने अपनी प्रिय रानी को यह स्नेहभरा संबोधन दिया होगा।

? *मिन्हाज के विचार अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए। क्या आपको लगता है कि रज़िया के विचार भी यही थे? आप के अनुसार, स्त्री के लिए शासक बनना इतना कठिन क्यों था?*

ख़लजी और तुग़लक़ वंश के अंतर्गत प्रशासन– नज़दीक से एक नज़र

दिल्ली सल्तनत जैसे विशाल साम्राज्य के समेकन के लिए विश्वसनीय सूबेदारों तथा प्रशासकों की ज़रूरत थी। दिल्ली के आरंभिक सुलतान, विशेषकर इल्तुतमिश, सामंतों और ज़मींदारों के स्थान पर अपने विशेष गुलामों को सूबेदार नियुक्त करना अधिक पसंद करते थे। इन गुलामों को फ़ारसी में *बंदगाँ* कहा जाता है तथा इन्हें सैनिक सेवा के लिए खरीदा जाता था। उन्हें राज्य के कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर काम करने के लिए बड़ी सावधानी से प्रशिक्षित किया जाता था। वे चूँकि पूरी तरह अपने मालिक पर निर्भर होते थे, इसलिए सुलतान भी विश्वास करके उन पर निर्भर हो सकते थे।

© NCERT not to be republished

बेटों से बढ़कर ग़ुलाम

सुलतानों को सलाह दी जाती थी:

जिस ग़ुलाम को हमने पाला-पोसा और आगे बढ़ाया है, उसकी हमें देखभाल करनी चाहिए, क्योंकि तकदीर अच्छी हो, तभी पूरी ज़िंदगी में कभी-कभी ही योग्य और अनुभवी ग़ुलाम मिलता है। बुद्धिमानों का कहना है कि योग्य और अनुभवी ग़ुलाम बेटे से भी बढ़कर होता है...

? *क्या आपको ग़ुलाम को बेटे से बढ़कर मानने का कोई कारण समझ में आता है?*

आश्रित
जो किसी अन्य व्यक्ति के संरक्षण में रहता हो, उस पर निर्भर हो।

ख़लजी तथा तुग़लक़ शासक बंदगाँ का इस्तेमाल करते रहे और साथ ही अपने पर **आश्रित** निम्न वर्ग के लोगों को भी ऊँचे राजनीतिक पदों पर बैठाते रहे। ऐसे लोगों को सेनापति और सूबेदार जैसे पद दिए जाते थे। लेकिन इससे राजनीतिक अस्थिरता भी पैदा होने लगी।

ग़ुलाम और आश्रित अपने मालिकों और संरक्षकों के प्रति तो वफ़ादार रहते थे मगर उनके उत्तराधिकारियों के प्रति नहीं। सुलतानों के अपने नौकर होते थे। फलस्वरूप किसी नए शासक के सिंहासन पर बैठते ही प्रायः नए और पुराने सरदारों के बीच टकराहट शुरू हो जाती थी। सुलतानों द्वारा निचले तबके के लोगों को संरक्षण दिए जाने के कारण उच्च वर्ग के कई लोगों को गहरा धक्का भी लगता था और फ़ारसी तवारीख के लेखकों ने 'निचले खानदान' के लोगों को ऊँचे पदों पर बैठाने के लिए दिल्ली के सुलतानों की आलोचना भी की है।

सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ के अधिकारीजन

सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ ने अज़ीज खुम्मार नामक कलाल (शराब बनाने और बेचने वाला), फ़िरुज़ हज्जाम नामक नाई, मनका तब्बाख नामक बावर्ची और लड्ढा तथा पीरा नामक मालियों को ऊँचे प्रशासनिक पदों पर बैठाया था। चौदहवीं शताब्दी के मध्य के इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने इन नियुक्तियों का उल्लेख सुलतान के राजनीतिक विवेक के नाश और शासन करने की अक्षमता के उदाहरणों के रूप में किया है।

? *आपके ख्याल से बरनी ने सुलतान की आलोचना क्यों की थी?*

© NCERT not to be republished

पहले वाले सुलतानों की ही तरह ख़लजी और तुग़लक़ शासकों ने भी सेनानायकों को भिन्न-भिन्न आकार के इलाकों के सूबेदार के रूप में नियुक्त किया। ये इलाके इक़्ता कहलाते थे और इन्हें सँभालने वाले अधिकारी इक़्तदार या मुक़्ती कहे जाते थे। मुक़्ती का फ़र्ज था सैनिक अभियानों का नेतृत्व करना और अपने इक़्तों में कानून और व्यवस्था बनाए रखना। अपनी सैनिक सेवाओं के बदले वेतन के रूप में मुक़्ती अपने इलाकों से राजस्व की वसूली किया करते थे। राजस्व के रूप में मिली रकम से ही वे अपने सैनिकों को भी तनख्वाह देते थे। मुक़्ती लोगों पर काबू रखने का सबसे प्रभावी तरीका यह था कि उनका पद वंश-परंपरा से न चले और उन्हें कोई भी इक़्ता थोड़े-थोड़े समय के लिए ही मिले, जिसके बाद उनका स्थानांतरण कर दिया जाए। सुलतान अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद तुग़लक़ के शासनकाल में नौकरी के इन कठोर नियमों का बड़ी सख्ती से पालन होता था। मुक़्ती लोगों द्वारा एकत्रित किए गए राजस्व की रकम का हिसाब लेने के लिए राज्य द्वारा लेखा अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। इस बात का ध्यान रखा जाता था कि मुक़्ती राज्य द्वारा निर्धारित कर ही वसूलें और तय संख्या के अनुसार सैनिक रखें।

जब दिल्ली के सुलतान शहरों से दूर आंतरिक इलाकों को भी अपने अधिकार में ले आए तो उन्होंने भूमि के स्वामी सामंतों और अमीर ज़मींदारों को भी अपनी सत्ता के आगे झुकने को बाध्य कर दिया। अलाउद्दीन ख़लजी के शासनकाल में भू-राजस्व के निर्धारण और वसूली के कार्य को राज्य अपने नियंत्रण में ले आया। स्थानीय सामंतों से कर लगाने का अधिकार छीन लिया गया, बल्कि स्वयं उन्हें भी कर चुकाने को बाध्य किया गया। सुलतान के प्रशासकों ने ज़मीन की पैमाइश की और इसका हिसाब बड़ी सावधानी से रखा। कुछ पुराने सामंत और ज़मींदार राजस्व के निर्धारण और वसूली अधिकारी के रूप में सल्तनत की नौकरी करने लगे। उस समय तीन तरह के कर थे– (1) कृषि पर, जिसे *खराज* कहा जाता था और जो किसान की उपज का लगभग पचास प्रतिशत होता था; (2) मवेशियों पर; तथा (3) घरों पर।

यह याद रखना ज़रूरी है कि इस उपमहाद्वीप का काफ़ी बड़ा हिस्सा दिल्ली के सुलतानों के अधिकार से बाहर ही था। दिल्ली से बंगाल जैसे सुदूर प्रांतों का नियंत्रण कठिन था और दक्षिण भारत की विजय के तुरंत बाद ही वह पूरा क्षेत्र फिर-से स्वतंत्र हो गया था। यहाँ तक कि गंगा के

इस काल में खराज़ के अलावा कुछ अन्य कर भी लगाए गए:-

खुम्स- युद्ध मे लुटे गए माल पर लगने वाला कर। इस धन का 1/5 सुल्तान का एवं 4/5 सैनिकों का होता था।

जकात- यह एक धार्मिक कर था जो मुस्लिमों की आय का 2.5% या 1/40 भाग था। लोकप्रिय मतों के अनुसार इसका आरंभ पैगंवर के द्वारा किया गया था। इसे सभी मुस्लिमों के लिए अनिवार्य कर दिया गया था। सल्तनत एवं मुगल काल में व्यापारियों से आयात-निर्यात पर 2.5% जकात वसूला जाता था।

जजिया- यह गैर मुस्लिमों से लिया जाने वाला कर था जो उन्हे जिम्मी या संरक्षित नागरिक का दर्जा प्रदान करता था। सल्तनत काल में इसकी वसूली खराज़ के साथ

2024-25

की जाती थी। किन्तु फिरोज़ शाह तुगलक ने जजिया को एक अलग कर के रूप में संगृहित किया।

स्रोत- यू.एन.डे., 1959 एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ दिल्ली सुल्तनत, किताब महल प्रकाशन, इलाहबाद

मैदानी इलाके में भी घने जंगलों वाले ऐसे क्षेत्र थे, जिनमें पैठने में सुलतान की सेनाएँ अक्षम थीं। स्थानीय सरदारों ने इन क्षेत्रों में अपना शासन जमा लिया। अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद तुग़लक़ इन इलाकों पर ज़ोर-ज़बरदस्ती अपना अधिकार जमा तो लेते थे, पर वह अधिकार कुछ ही समय तक रह पाता था।

सरदार और उनकी किलेबंदी

अफ़्रीकी देश, मोरक्को से चौदहवीं सदी में भारत आए यात्री इब्न बतूता ने बतलाया है कि सरदार कभी-कभी

चट्टानी, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी इलाकों में किले बनाकर रहते थे और कभी-कभी बाँस के झुरमुटों में। भारत में बाँस पोला नहीं होता। यह बहुत बड़ा होता है। इसके अलग-अलग हिस्से आपस में इस तरह से गुँथे होते हैं कि उन पर आग का भी असर नहीं होता और वे कुल मिलाकर बहुत ही मज़बूत होते हैं। सरदार इन जंगलों में रहते हैं, जो इनके लिए किले की प्राचीर का काम देते हैं। इस दीवार के घेरे में ही उनके मवेशी और फ़सल रहते हैं। अंदर ही पानी भी उपलब्ध रहता है, अर्थात् वहाँ एकत्रित हुआ वर्षा का जल। इसलिए उन्हें प्रबल बलशाली सेनाओं के बिना हराया नहीं जा सकता। ये सेनाएँ जंगल में घुसकर खासतौर से तैयार किए गए औज़ारों से बाँसों को काट डालती हैं।

? *सरदारों की रक्षा-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।*

चंगेज़ ख़ान के नेतृत्व में मंगोलों ने 1219 में उत्तर-पूर्वी ईरान में ट्रांसऑक्ससियाना (आधुनिक उज़बेकिस्तान) पर हमला किया और इसके शीघ्र बाद ही दिल्ली सल्तनत को उनका धावा झेलना पड़ा। अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद तुग़लक़ के शासनकालों के आरंभ में दिल्ली पर मंगोलों के धावे बढ़ गए। इससे मजबूर होकर दोनों ही सुलतानों को एक विशाल स्थानीय सेना खड़ी करनी पड़ी। इतनी विशाल सेना को सँभालना प्रशासन के लिए भारी चुनौती थी।

पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में सल्तनत

तालिका 1 को फिर से देखें। आप पाएँगे कि तुग़लक़ वंश के बाद 1526 तक दिल्ली तथा आगरा पर सैयद तथा लोदी वंशों का राज्य रहा। तब

© NCERT not to be republished

तक जौनपुर, बंगाल, मालवा, गुजरात, राजस्थान तथा पूरे दक्षिण भारत में स्वतंत्र शासक उठ खड़े हुए थे। उनकी राजधानियाँ समृद्ध थीं और राज्य फल-फूल रहे थे। इसी काल में अफ़गान तथा राजपूतों जैसे नए शासक समूह भी उभरे।

इस काल में स्थापित राज्यों में से कुछ छोटे तो थे पर शक्तिशाली थे और उनका शासन बहुत ही कुशल तथा सुव्यवस्थित तरीके से चल रहा था। शेरशाह सूर (1540–1545) ने बिहार में अपने चाचा के एक छोटे-से इलाके के प्रबंधक के रूप में काम शुरू किया था और आगे चलकर उसने इतनी उन्नति की कि मुग़ल सम्राट हुमायूँ (1530–1540, 1555–1556) तक को चुनौती दी और परास्त किया। शेरशाह ने दिल्ली पर अधिकार करके स्वयं अपना राजवंश स्थापित किया। सूर वंश ने केवल पंद्रह वर्ष (1540–1555) शासन किया, लेकिन इसके प्रशासन ने अलाउद्दीन ख़लजी वाले कई तरीकों को अपनाकर उन्हें और भी चुस्त बना दिया। महान सम्राट अकबर (1556–1605) ने जब मुग़ल साम्राज्य को समेकित किया, तो उसने अपने प्रतिमान के रूप में शेरशाह की प्रशासन व्यवस्था को ही अपनाया था।

कल्पना करें

आप अलाउद्दीन ख़लजी या मुहम्मद तुग़लक़ के शासन काल में एक किसान हैं और आप सुलतान द्वारा लगाया गया कर नहीं चुका सकते। आप क्या करेंगे?

फिर से याद करें

1. दिल्ली में पहले-पहल किसने राजधानी स्थापित की?
2. दिल्ली के सुलतानों के शासनकाल में प्रशासन की भाषा क्या थी?
3. किसके शासन के दौरान सल्तनत का सबसे अधिक विस्तार हुआ?
4. इब्न बतूता किस देश से भारत में आया था?

बीज शब्द

इक़्ता
तारीख
गैरिसन
मंगोल
लिंग
खराज

© NCERT not to be republished

आइए समझें

5. 'न्याय चक्र' के अनुसार सेनापतियों के लिए किसानों के हितों का ध्यान रखना क्यों ज़रूरी था?

6. सल्तनत की 'भीतरी' और 'बाहरी' सीमा से आप क्या समझते हैं?

7. मुक़्ती अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, यह सुनिश्चित करने के लिए कौन-कौन से कदम उठाए गए थे? आपके विचार में सुलतान के आदेशों का उल्लंघन करना चाहने के पीछे उनके क्या कारण हो सकते थे?

आइए विचार करें

8. क्या आपकी समझ में तवारीख के लेखक, आम जनता के जीवन के बारे में कोई जानकारी देते हैं?

9. दिल्ली सल्तनत के इतिहास में रजिया सुलतान अपने ढंग की एक ही थीं। क्या आपको लगता है कि आज महिला नेताओं को ज़्यादा आसानी से स्वीकार किया जाता है?

10. दिल्ली के सुलतान जंगलों को क्यों कटवा देना चाहते थे? क्या आज भी जंगल उन्हीं कारणों से काटे जा रहे हैं?

आइए करके देखें

11. पता लगाइए कि क्या आपके इलाके में दिल्ली के सुलतानों द्वारा बनवाई गई कोई इमारत है? क्या आपके इलाके में और भी कोई ऐसी इमारत है, जो बारहवीं से पंद्रहवीं सदी के बीच बनाई गई हो? इनमें से कुछ इमारतों का वर्णन कीजिए और उनके रेखाचित्र बनाइए।

© NCERT not to be republished

4 मुग़ल: सोलहवीं से सत्रहवीं शताब्दी

मध्यकाल में किसी भी शासक के लिए भारतीय उपमहाद्वीप जैसे बड़े क्षेत्र पर, जहाँ लोगों एवं संस्कृतियों में इतनी अधिक विविधताएँ हो, शासन कर पाना अत्यंत ही कठिन कार्य था। अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत मुग़लों ने एक साम्राज्य की स्थापना की और वह कार्य पूरा किया, जो अब तक केवल छोटी अवधियों के लिए ही संभव जान पड़ता था। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध से, इन्होंने दिल्ली और आगरा से अपने राज्य का विस्तार शुरू किया और सत्रहवीं शताब्दी में लगभग संपूर्ण महाद्वीप पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्होंने प्रशासन के ढाँचे तथा शासन संबंधी जो विचार लागू किए, वे उनके राज्य के पतन के बाद भी टिके रहे। यह एक ऐसी राजनैतिक धरोहर थी, जिसके प्रभाव से उपमहाद्वीप में उनके पश्चात् आने वाले शासक अपने को अछूता न रख सके। आज भारत के प्रधानमंत्री, स्वतंत्रता दिवस पर मुग़ल शासकों के निवासस्थान, दिल्ली के लालकिले की प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हैं।

चित्र 1
लालकिला

© NCERT be republished

मुग़ल कौन थे?

मुग़ल दो महान शासक वंशों के वंशज थे। माता की ओर से वे मंगोल शासक चंगेज़ खान जो चीन और मध्य एशिया के कुछ भागों पर राज करता था, के उत्तराधिकारी थे। पिता की ओर से वे ईरान, इराक एवं वर्तमान तुर्की के शासक तैमूर (जिसकी मृत्यु 1404 में हुई) के वंशज थे। परंतु मुग़ल अपने को मुग़ल या मंगोल कहलवाना पसंद नहीं करते थे। ऐसा इसलिए था, क्योंकि चंग़ेज ख़ान से जुड़ी स्मृतियाँ सैंकड़ों व्यक्तियों के नरसंहार से संबंधित थीं। यही स्मृतियाँ मुग़लों के प्रतियोगियों उज़बेगों से भी संबंधित थीं। दूसरी तरफ़, मुग़ल, तैमूर के वंशज होने पर गर्व का अनुभव करते थे, ज़्यादा इसलिए क्योंकि उनके इस महान पूर्वज ने 1398 में दिल्ली पर कब्ज़ा कर लिया था।

उन्होंने अपनी वंशावली का प्रदर्शन चित्र बनवाकर किया। प्रत्येक मुग़ल शासक ने तैमूर के साथ अपना चित्र बनवाया।

चित्र 2
मुग़ल फ़ौज अभियान पर

मुग़ल सैन्य अभियान

प्रथम मुग़ल शासक बाबर (1526–1530) ने जब 1494 में फरगना राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त किया, तो उसकी उम्र केवल बारह वर्ष की थी। मंगोलों की दूसरी शाखा, उज़बेगों के आक्रमण के कारण उसे अपनी पैतृक गद्दी छोड़नी पड़ी। अनेक वर्षों तक भटकने के बाद उसने 1504 में काबुल पर कब्ज़ा कर लिया। उसने 1526 में दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी को पानीपत में हराया और दिल्ली और आगरा को अपने कब्ज़े में कर लिया।

चित्र 3
सोलहवीं शताब्दी के युद्धों में तोप और गोलाबारी का पहली बार इस्तेमाल हुआ। बाबर ने इनका पानीपत की पहली लड़ाई में प्रभावी ढंग से प्रयोग किया।

not to be republished © NCERT

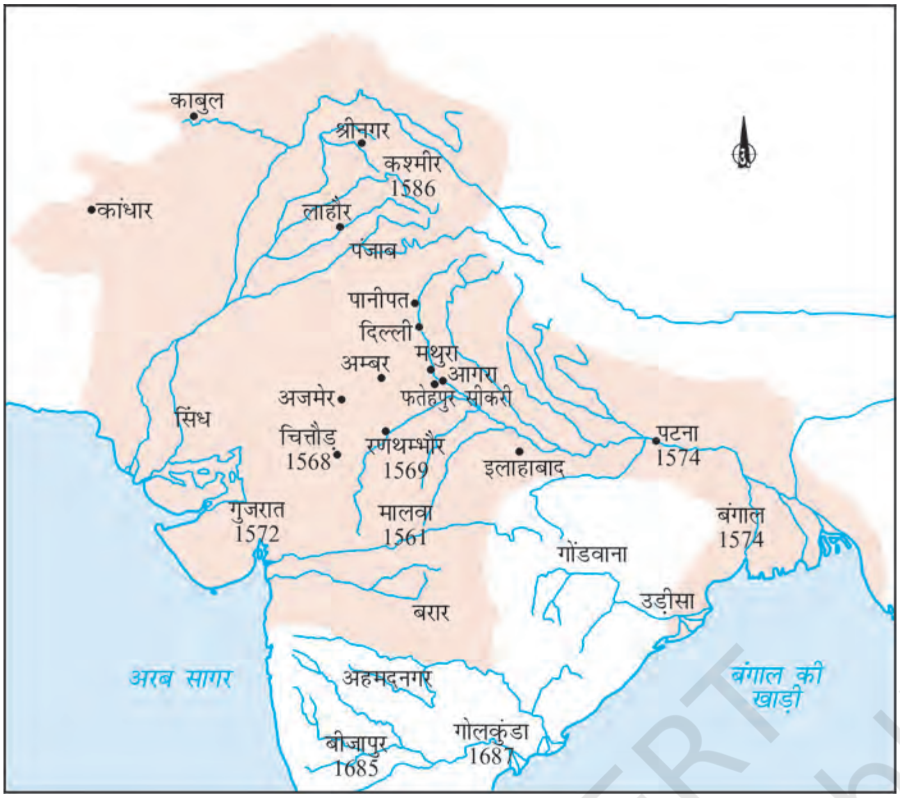

मानचित्र 1
अकबर का शासन, 1605

उत्तराधिकार की मुग़ल परंपराएँ

मुग़ल ज्येष्ठाधिकार के नियम में विश्वास नहीं करते थे जिसमें ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी होता था। इसके विपरीत, उत्तराधिकार में वे सहदायाद की मुग़ल और तैमूर वंशों की प्रथा को अपनाते थे जिसमें उत्तराधिकार का विभाजन समस्त पुत्रों में कर दिया जाता था। आपके अनुसार उत्तराधिकार का कौन-सा तरीका सही था— ज्येष्ठाधिकार या सहदायाद?

मुग़लों के अन्य शासकों के साथ संबंध

मुग़लों ने उन शासकों के विरुद्ध लगातार अभियान किए, जिन्होंने उनकी सत्ता को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। जब मुग़ल शक्तिशाली हो गए तो अन्य कई शासकों ने स्वेच्छा से उनकी सत्ता स्वीकार कर ली। राजपूत इसका एक अच्छा उदाहरण हैं। अनेकों ने मुग़ल घराने में अपनी पुत्रियों के विवाह करके उच्च पद प्राप्त किए। परंतु कइयों ने विरोध भी किया।

राजपूतों के साथ मुग़लों की शादियाँ

जहाँगीर की माँ कच्छवा की राजकुमारी थी। वह अम्बर (वर्तमान में जयपुर) के राजपूत शासक की पुत्री थी। शाहजहाँ की माँ एक राठौड़ राजकुमारी थी। वह मारवाड़ (जोधपुर) के राजपूत शासक की पुत्री थी।

© NCERT not to be republished

मेवाड़ के सिसोदिया राजपूत लंबे समय तक मुग़लों की सत्ता को स्वीकार करने से इंकार करते रहे, परंतु जब वे हारे तो मुग़लों ने उनके साथ सम्माननीय व्यवहार किया और उन्हें उनकी जागीरें (वतन), वतन जागीर के रूप में वापिस कर दीं। पराजित करने परंतु अपमानित न करने के बीच सावधानी से बनाए गए संतुलन की वजह से मुग़ल भारत के अनेक शासकों और सरदारों पर अपना प्रभाव बढ़ा पाए। परंतु इस संतुलन को हमेशा बरकरार रखना कठिन था।

मनसबदार और जागीरदार

जैसे-जैसे साम्राज्य में विभिन्न क्षेत्र सम्मिलित होते गए, वैसे-वैसे मुग़लों ने तरह-तरह के सामाजिक समूहों के सदस्यों को प्रशासन में नियुक्त करना आरंभ किया। शुरू-शुरू में ज़्यादातर सरदार, तुर्की (तूरानी) थे, लेकिन अब इस छोटे समूह के साथ-साथ उन्होंने शासक वर्ग में ईरानियों, भारतीय मुसलमानों, अफ़गानों, राजपूतों, मराठों और अन्य समूहों को सम्मिलित किया। मुग़लों की सेवा में आने वाले नौकरशाह 'मनसबदार' कहलाए।

'मनसबदार' शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिए होता था, जिन्हें कोई मनसब यानी कोई सरकारी हैसियत अथवा पद मिलता था। यह मुग़लों द्वारा चलाई गई श्रेणी व्यवस्था थी, जिसके जरिए (1) पद; (2) वेतन; एवं (3) सैन्य उत्तरदायित्व, निर्धारित किए जाते थे। पद और वेतन का निर्धारण जात की संख्या पर निर्भर था। जात की संख्या जितनी अधिक होती थी, दरबार में अभिजात की प्रतिष्ठा उतनी ही बढ़ जाती थी और उसका वेतन भी उतना ही अधिक होता था।

जो सैन्य उत्तरदायित्व मनसबदारों को सौंपे जाते थे उन्हीं के अनुसार उन्हें घुड़सवार रखने पड़ते थे।

मनसबदार अपने सवारों को निरीक्षण के लिए लाते थे। वे अपने सैनिकों के घोड़ों को दगवाते थे एवं सैनिकों का पंजीकरण करवाते थे। इन कार्यवाहियों के बाद ही उन्हें सैनिकों को वेतन देने के लिए धन मिलता था।

मनसबदार अपना वेतन राजस्व एकत्रित करने वाली भूमि के रूप में पाते थे, जिन्हें *जागीर* कहते थे और जो तकरीबन 'इक़्ताओं' के समान थीं। परंतु मनसबदार, मुक़्तियों से भिन्न, अपने जागीरों पर नहीं रहते थे और न ही उन

जात की श्रेणियाँ

5,000 जात वाले अभिजातों का 1,000 जात वाले अभिजातों से ऊँचा था। अकबर के शासन काल में 29 ऐसे मनसबदार थे जो 5,000 जात की पदवी के थे। औरंगज़ेब के शासनकाल तक ऐसे मनसबदारों की संख्या 79 हो गई। क्या इसका अर्थ यह हुआ कि राज्य का खर्चा बढ़ गया।

© NCERT not to be republished

पर प्रशासन करते थे। उनके पास अपनी जागीरों से केवल राजस्व एकत्रित करने का अधिकार था। यह राजस्व उनके नौकर उनके लिए एकत्रित करते थे, जबकि वे स्वयं देश के किसी अन्य भाग में सेवारत रहते थे।

चित्र 4
अपने सवारों के साथ एक मनसबदार अभियान पर

अकबर के शासनकाल में इन जागीरों का सावधानीपूर्वक आकलन किया जाता था, ताकि इनका राजस्व मनसबदार के वेतन के तकरीबन बराबर रहे। औरंगज़ेब के शासनकाल तक पहुँचते-पहुँचते स्थिति बदल गई। अब प्राप्त राजस्व, मनसबदार के वेतन से बहुत कम था। मनसबदारों की संख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हुई, जिसके कारण उन्हें जागीर मिलने से पहले एक लंबा इंतजार करना पड़ता था। इन सभी कारणों से जागीरों की संख्या में कमी हो गई। फलस्वरूप कई जागीरदार, जागीर रहने पर यह कोशिश करते थे कि वे जितना राजस्व वसूल कर सकें, कर लें। अपने शासनकाल के अंतिम वर्षों में औरंगज़ेब इन परिवर्तनों पर नियंत्रण नहीं रख पाया। इस कारण किसानों को अत्यधिक मुसीबतों का सामना करना पड़ा।

ज़ब्त और ज़मीदार

मुग़लों की आमदनी का प्रमुख साधन किसानों की उपज से मिलने वाला राजस्व था। अधिकतर स्थानों पर किसान ग्रामीण कुलीनों यानी कि मुखिया या स्थानीय सरदारों के माध्यम से राजस्व देते थे। समस्त मध्यस्थों के लिए, चाहे वे स्थानीय ग्राम के मुखिया हों या फिर शक्तिशाली सरदार हों, मुग़ल एक ही शब्द –ज़मीदार– का प्रयोग करते थे।

अकबर के राजस्वमंत्री टोडरमल ने दस साल (1570–1580) की कालावधि के लिए कृषि की पैदावार, कीमतों और कृषि भूमि का सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण किया। इन आँकड़ों के आधार पर, प्रत्येक फ़सल पर नकद के रूप में कर (राजस्व) निश्चित कर दिया गया। प्रत्येक सूबे (प्रांत) को राजस्व मंडलों में बाँटा गया और प्रत्येक की हर फ़सल के लिए राजस्व दर की अलग सूची बनायी गई। राजस्व प्राप्त करने की इस व्यवस्था को 'ज़ब्त'

© NCERT not to be republished

कहा जाता था। यह व्यवस्था उन स्थानों पर प्रचलित थी जहाँ पर मुग़ल प्रशासनिक अधिकारी भूमि का निरीक्षण कर सकते थे और सावधानीपूर्वक उनका हिसाब रख सकते थे। ऐसा निरीक्षण गुजरात और बंगाल जैसे प्रांतों में संभव नहीं हो पाया।

कुछ क्षेत्रों में ज़मीदार इतने शक्तिशाली थे कि मुग़ल प्रशासकों द्वारा शोषण किए जाने की स्थिति में वे विद्रोह कर सकते थे। कभी-कभी एक ही जाति के ज़मीदार और किसान मुग़ल सत्ता के खिलाफ़ मिलकर विद्रोह कर देते थे। सत्रहवीं शताब्दी के आखिर से ऐसे किसान विद्रोहों ने मुग़ल साम्राज्य के स्थायित्व को चुनौती दी।

चित्र 5

शाहजहाँ के राज-काल के एक लघु चित्र के ब्यौरे। यहाँ जहाँगीर के समय के भ्रष्टाचार को दिखाया गया है— (1) भ्रष्ट अफ़सर रिश्वत लेते हुए; (2) एक कर अधिकारी गरीब किसानों को सजा देते हुए।

चित्र 6

अबुल फ़ज्ल से अकबरनामा लेते हुए अकबर

अकबर नामा और आइने-अकबरी

अकबर ने अपने करीबी मित्र और दरबारी अबुल फ़ज़्ल को आदेश दिया कि वह उसके शासनकाल का इतिहास लिखे। अबुल फ़ज़्ल ने यह इतिहास तीन ज़िल्दों में लिखा और इसका शीर्षक है *अकबरनामा*। पहली ज़िल्द में अकबर के पूर्वजों का बयान है और दूसरी अकबर के शासनकाल की घटनाओं का विवरण देती है। तीसरी जिल्द *आइने-अकबरी* है। इसमें अकबर के प्रशासन, घराने, सेना, राजस्व और साम्राज्य के भूगोल का ब्यौरा मिलता है। इसमें समकालीन भारत के लोगों की परंपराओं और संस्कृतियों का भी विस्तृत वर्णन है। *आइने-अकबरी* का सब से रोचक आयाम है, विविध प्रकार की चीज़ों– फ़सलों, पैदावार, कीमतों, मज़दूरी और राजस्व-का सांख्यिकीय विवरण।

2024-25

जहाँगीर के दरबार पर नूरजहाँ का प्रभाव

मेहरुन्निसा ने 1611 में जहाँगीर से विवाह किया और उसे नूरजहाँ का खिताब मिला। नूरजहाँ हमेशा जहाँगीर के प्रति अत्यधिक वफ़ादार रही और उसको समय-समय पर सहयोग देती रही। नूरजहाँ के सम्मान में जहाँगीर ने चाँदी के सिक्के जारी किए, जिनमें एक ओर स्वयं के खिताब उत्कीर्ण थे और दूसरी ओर यह वाक्य: 'रानी बेगम नूरजहाँ के नाम से गढ़ा हुआ।'

बाईं ओर दिया गया दस्तावेज़, नूरजहाँ द्वारा जारी किया गया आदेश (फ़रमान) है। चौकोर मोहर बताती है– 'उदात्त और महान महारानी नूरजहाँ पादशाह बेगम का आदेश'। गोल मोहर के अनुसार, 'शाह जहाँगीर के प्रताप से महारानी, चन्द्रमा जैसी वैभवशाली बन गई: हम कामना करते हैं कि नूरजहाँ पादशाह इस युग की सर्वोत्तम महिला बने'

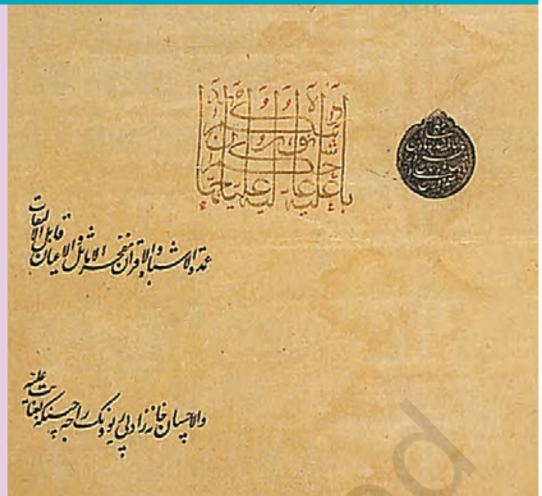

चित्र 7
नूरजहाँ का फ़रमान

सुलह-ए-कुल

अकबर की *सुलह-ए-कुल* की नीति का उनके पुत्र जहाँगीर ने इस प्रकार वर्णन किया है:

ईश्वरीय अनुकंपा के विस्तृत आँचल में सभी वर्गों और सभी धर्मों के अनुयायियों की एक जगह है। इसलिए... उसके विशाल साम्राज्य में, जिसकी चारों ओर की सीमाएँ केवल समुद्र से ही निर्धारित होती थी विरोधी धर्मों के अनुयायियों और तरह-तरह के अच्छे-बुरे विचारों के लिए जगह थी। यहाँ असहिष्णुता का मार्ग बंद था। यहाँ सुन्नी और शिया एक ही मसज़िद में इकट्ठे होते थे और ईसाई और यहूदी एक ही गिरजे में प्रार्थना करते थे। उसने सुसंगत तरीके से 'सार्विक शांति' (सुलह-ए-कुल) के सिद्धांत का पालन किया।

सत्रहवीं शताब्दी में और उसके पश्चात मुग़ल साम्राज्य

मुग़ल साम्राज्य की प्रशासनिक और सैनिक कुशलता के फलस्वरूप आर्थिक और वाणिज्यिक समृद्धि में वृद्धि हुई। विदेशी यात्रियों ने इसे वैसा धनी देश बताया, जैसा कि किस्से-कहानियों में वर्णित होता रहा है। परंतु यही यात्री इसी प्रचुरता के साथ मिलने वाली दरिद्रता को देखकर विस्मित

2024-25

रह गए। सामाजिक असमानताएँ साफ़ दिखाई पड़ती थीं। शाहजहाँ के शासनकाल के बीसवें वर्ष के दस्तावेज़ों से हमें पता चलता है कि ऐसे मनसबदार, जिनको उच्चतम पद प्राप्त था, कुल 8000 में से 445 ही थे। कुल मनसबदारों की एक छोटी संख्या 5.6 प्रतिशत को ही साम्राज्य के अनुमानित राजस्व का 61.5 प्रतिशत, स्वयं उनके व उनके सवारों के वेतन के रूप में दिया जाता था।

मुग़ल सम्राट और उनके मनसबदार अपनी आय का बहुत बड़ा भाग वेतन और वस्तुओं पर लगा देते थे। इस ख़र्चे से शिल्पकारों और किसानों को लाभ होता था, चूँकि वे वस्तुओं और फ़सल की पूर्ति करते थे। परंतु राजस्व का भार इतना था कि प्राथमिक उत्पादकों–किसान और शिल्पकारों– के पास निवेश के लिए बहुत कम धन बचता था। इनमें से जो बहुत गरीब थे, मुश्किल से ही पेट भर पाते थे। वे उत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिए अतिरिक्त संसाधनों में – औज़ारों और अन्य वस्तुओं में–निवेश करने की बात सोच भी नहीं सकते थे। ऐसी अर्थव्यवस्था में ज़्यादा धनी किसान, शिल्पकारों के समूह, व्यापारी और महाजन ज़्यादा लाभ उठाते थे।

मुग़लों के कुलीन वर्ग के हाथों में बहुत धन और संसाधन थे, जिनके कारण सत्रहवीं सदी के अंतिम वर्षों में वे अत्यधिक शक्तिशाली हो गए। जैसे – जैसे मुग़ल सम्राट की सत्ता पतन की ओर बढ़ती गई, वैसे-वैसे विभिन्न क्षेत्रों में सम्राट के सेवक, स्वयं ही सत्ता के शक्तिशाली केंद्र बनने लगे। इनमें से कुछ ने नए वंश स्थापित किए और हैदराबाद एवं अवध जैसे प्रांतों में अपना नियंत्रण जमाया। यद्यपि वे दिल्ली के मुग़ल सम्राट को स्वामी के रूप में मान्यता देते रहे, तथापि अठारहवीं शताब्दी तक साम्राज्य के कई प्रांत अपनी स्वतंत्र राजनैतिक पहचान बना चुके थे।

कल्पना कीजिए

बाबर और अकबर शासक बनने के समय आपकी ही उम्र के थे। कल्पना करें कि आपको पैतृक संपत्ति के रूप में एक राज्य प्राप्त होता है। आप अपने राज्य को स्थायी और समृद्ध कैसे बनाएँगें?

© NCERT not to be republished

फिर से याद करें

1. सही जोड़े बनाएँ:

मनसब	मारवाड़
मंगोल	उज़बेग
सिसौदिया राजपूत	मेवाड़
राठौर राजपूत	पद
नूरजहाँ	जहाँगीर

2. रिक्त स्थान भरें:

   (क) दक्कन की पाँचों सल्तनत बरार, खानदेश, अहमद नगर, ____________ और ____________ थीं।

   (ख) यदि जात एक मनसबदार के पद और वेतन का द्योतक था, तो सवार उसके ____________ को दिखाता था।

   (ग) अकबर के दोस्त और सलाहकार, अबुल फ़ज़्ल ने उसकी ____________ के विचार को गढ़ने में मदद की जिसके द्वारा वह विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और जातियों से बने समाज पर राज्य कर सका।

3. मुग़ल राज्य के अधीन आने वाले केंद्रीय प्रांत कौन-से थे?

4. मनसबदार और जागीर में क्या संबंध था।

आइए समझें

5. मुग़ल प्रशासन में ज़मींदार की क्या भूमिका थी?

6. शासन-प्रशासन संबंधी अकबर के विचारों के निर्माण में धार्मिक विद्वानों से होने वाली चर्चाएँ कितनी महत्त्वपूर्ण थीं?

7. मुग़लों ने खुद को मंगोल की अपेक्षा तैमूर के वंशज होने पर क्यों बल दिया?

बीज शब्द

मुग़ल
मनसब
जागीरदार
जात
सवार
सुलह-ए-कुल
ज्येष्ठाधिकार
सहदायाद
ज़ब्त
ज़मींदार

© NCERT not to be republished

आइए विचार करें

8. भू-राजस्व से प्राप्त होने वाली आय, मुग़ल साम्राज्य के स्थायित्व के लिए कहाँ तक ज़रूरी थी?

9. मुग़लों के लिए केवल तूरानी या ईरानी ही नहीं, बल्कि विभिन्न पृष्ठभूमि के मनसबदारों की नियुक्ति क्यों महत्त्वपूर्ण थी?

10. मुग़ल साम्राज्य के समाज की ही तरह वर्तमान भारत, आज भी अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक इकाइयों से बना हुआ है? क्या यह राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक चुनौती है?

11. मुग़ल साम्राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए कृषक अनिवार्य थे। क्या आप सोचते हैं कि वे आज भी इतने ही महत्त्वपूर्ण हैं? क्या आज भारत में अमीर और गरीब के बीच आय का फासला मुग़लों के काल की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है?

आइए करके देखें

12. मुग़ल साम्राज्य का उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों पर अनेक तरह से प्रभाव पड़ा। पता लगाइए कि जिस नगर, गाँव अथवा क्षेत्र में आप रहते हैं, उस पर इसका कोई प्रभाव पड़ा था?

© NCERT not to be republished

5 जनजातियाँ, खानाबदोश और एक जगह बसे हुए समुदाय

अध्याय 2, 3 और 4 में आपने देखा कि किस प्रकार राज्यों का उत्थान और पतन हुआ। इस उठापटक के बीच ही कलाओं, दस्तकारियों और उत्पादक गतिविधियों की नयी किस्में शहरों और गाँवों में फल-फूल रही थीं। एक लंबे अंतराल में कई महत्त्वपूर्ण राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। लेकिन सामाजिक परिवर्तन हर जगह एक समान नहीं थे, क्योंकि अलग-अलग किस्म के समाज अलग-अलग तरीकों से विकसित हुए। ऐसा कैसे और क्यों हुआ, यह समझना महत्त्वपूर्ण है।

इस उपमहाद्वीप के बड़े हिस्से में समाज, वर्ण के नियमानुसार पहले से ही विभाजित था। ब्राह्मणों द्वारा सुझाए गए ये नियम, बड़े-बड़े राज्यों के राजाओं द्वारा स्वीकार किए गए थे। इससे ऊँच और नीच तथा अमीर और गरीब के बीच का फ़ासला बढ़ा। दिल्ली के सुलतानों और मुग़लों के काल में श्रेणीबद्ध समाज ज़्यादा जटिल हो गया।

बड़े शहरों से परे – जनजातीय समाज

अलबत्ता, दूसरे तरह के समाज भी उस समय मौज़ूद थे। उपमहाद्वीप के कई समाज ब्राह्मणों द्वारा सुझाए गए सामाजिक नियमों और कर्मकांडों को नहीं मानते थे और न ही वे कई असमान वर्गों में विभाजित थे। अकसर ऐसे समाजों को जनजातियाँ कहा जाता रहा है।

प्रत्येक जनजाति के सदस्य नातेदारी के बंधन से जुड़े होते थे। कई जनजातियाँ खेती से अपना जीविकोपार्जन करती थीं। कुछ दूसरी जनजातियों के लोग शिकारी, संग्राहक या

0761CH05

चित्र 1
जनजातीय नृत्य: संताल चित्र खर्रा

© NCERT not to be republished

पशुपालक थे। प्रायः वे अपने निवासस्थान के प्राकृतिक संसाधनों का पूरा-पूरा इस्तेमाल करने के लिए इन गतिविधियों का मिला-जुला रूप अपनाते थे। कुछ जनजातियाँ खानाबदोश थीं और वे एक जगह से दूसरी जगह घूमती रहती थीं। जनजातीय समूह, संयुक्त रूप से भूमि और चरागाहों पर नियंत्रण रखते थे और अपने खुद के बनाए नियमों के आधार पर परिवारों के बीच इनका बँटवारा करते थे।

इस उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में कई बड़ी जनजातियाँ फली-फूलीं। सामान्यतः ये जंगलों, पहाड़ों, रेगिस्तानों और दूसरी दुर्गम जगहों पर निवास करती थीं। कभी-कभी जाति विभाजन पर आधारित अधिक शक्तिशाली समाजों के साथ उनका टकराव होता था। कई मायनों में इन जनजातियों ने अपनी आज़ादी को बरकरार रखा और अपनी अलहदा संस्कृति को बचाया।

लेकिन जाति-आधारित और जनजातीय समाज दोनों अपनी विविध किस्म की ज़रूरतों के लिए एक-दूसरे पर निर्भर भी रहे। टकराव और निर्भरता के इस संबंध ने दोनों तरह के समाजों को धीरे-धीरे बदलने का काम भी किया।

?

उपमहाद्वीप का एक भौतिक मानचित्र लेकर वे इलाके बताइए जहाँ जनजातीय लोग रहते रहे होंगे।

जनजातीय लोग कौन थे?

समकालीन इतिहासकारों और मुसाफ़िरों ने जनजातियों के बारे में बहुत कम जानकारी दी है। कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो जनजातीय लोग भी लिखित दस्तावेज़ नहीं रखते थे। लेकिन समृद्ध रीति-रिवाजों और वाचिक/मौखिक परंपराओं का वे संरक्षण करते थे। ये परंपराएँ हर नयी पीढ़ी को विरासत में मिलती थीं। आज के इतिहासकार जनजातियों का इतिहास लिखने के लिए इन वाचिक परंपराओं को इस्तेमाल करने लगे हैं।

जनजातीय लोग भारत के लगभग हर क्षेत्र में पाए जाते थे। किसी भी एक जनजाति का इलाका और प्रभाव समय के साथ-साथ बदलता रहता था। कुछ शक्तिशाली जनजातियों का बड़े इलाकों पर नियंत्रण था। पंजाब में खोखर जनजाति तेरहवीं और चौदहवीं सदी के दौरान बहुत प्रभावशाली थी। यहाँ बाद में गक्खर लोग ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो गए। उनके मुखिया, कमाल खान गक्खर को बादशाह अकबर ने मनसबदार बनाया था। मुल्तान और सिंध में मुग़लों द्वारा अधीन कर लिए जाने से पहले लंगाह और अरघुन लोगों का प्रभुत्व अत्यंत विस्तृत क्षेत्र पर था। उत्तर-पश्चिम में एक और विशाल

© NCERT not to be republished

मानचित्र 1
प्रमुख भारतीय जनजातियों के क्षेत्र

एवं शक्तिशाली जनजाति थी– बलोच। ये लोग अलग-अलग मुखियों वाले कई छोटे-छोटे **कुलों** में बँटे हुए थे। पश्चिमी हिमालय में गडड्डी गड़रियों की जनजाति रहती थी। उपमहाद्वीप के सुदूर उत्तर-पूर्वी भाग पर भी नागा, अहोम और कई दूसरी जनजातियों का पूरी तरह प्रभुत्व था।

मौज़ूदा बिहार और झारखंड के कई इलाकों में बारहवीं सदी तक चेर सरदारशाहियों का उदय हो चुका था। बादशाह अकबर के प्रसिद्ध सेनापति राजा मान सिंह ने 1591 में चेर लोगों पर हमला किया और उन्हें परास्त किया। उन्हें लूट कर अच्छा-खासा माल इकट्ठा किया गया, लेकिन वे पूरी तरह अधीन नहीं बनाए गए। औरंगज़ेब के समय में मुग़ल सेनाओं ने चेर लोगों के कई किलों पर कब्ज़ा किया और इस जनजाति को अपना अधीनस्थ बना लिया। इस क्षेत्र में रहने वाली महत्त्वपूर्ण जनजातियों में मुंडा और संताल थे, यद्यपि ये उड़ीसा और बंगाल में भी रहते थे।

कुल
परिवारों या घरों के एक ऐसे समूह को कुल कहते हैं जो एक ही पूर्वज की संतान होने का दावा करते हैं। जनजातीय संगठन प्रायः नातेदारी या कुल संबंधी निष्ठा पर आधारित होते हैं।

2024-25

चित्र 2 *रात में भील लोग हिरन का शिकार कर रहे हैं।*

कर्नाटक और महाराष्ट्र की पहाड़ियाँ– कोली, बेराद तथा कई दूसरी जनजातियों के निवासस्थान थे। कोली लोग गुजरात के कई इलाकों में भी रहते थे। कुछ और दक्षिण में कोरागा, वेतर, मारवार और दूसरी जनजातियों की विशाल आबादी थी।

भीलों की बड़ी जनजाति पश्चिमी और मध्य भारत में फैली हुई थी। सोलहवीं सदी का अंत आते-आते उनमें से कई एक जगह बसे हुए खेतिहर और यहाँ तक कि ज़मींदार बन चुके थे। तब भी भीलों के कई कुल शिकारी-संग्राहक बने रहे। मौजूदा छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में गोंड लोग बड़ी तादाद में फैले हुए थे।

खानाबदोश और घुमंतू लोग कैसे रहते थे

खानाबदोश चरवाहे अपने जानवरों के साथ दूर-दूर तक घूमते थे। उनका जीवन दूध और अन्य पशुचारी उत्पादों पर निर्भर था। वे खेतिहर गृहस्थों से अनाज, कपड़े, बर्तन और ऐसी ही चीज़ों के लिए ऊन, घी इत्यादि का विनिमय भी करते थे। कुछ खानाबदोश अपने

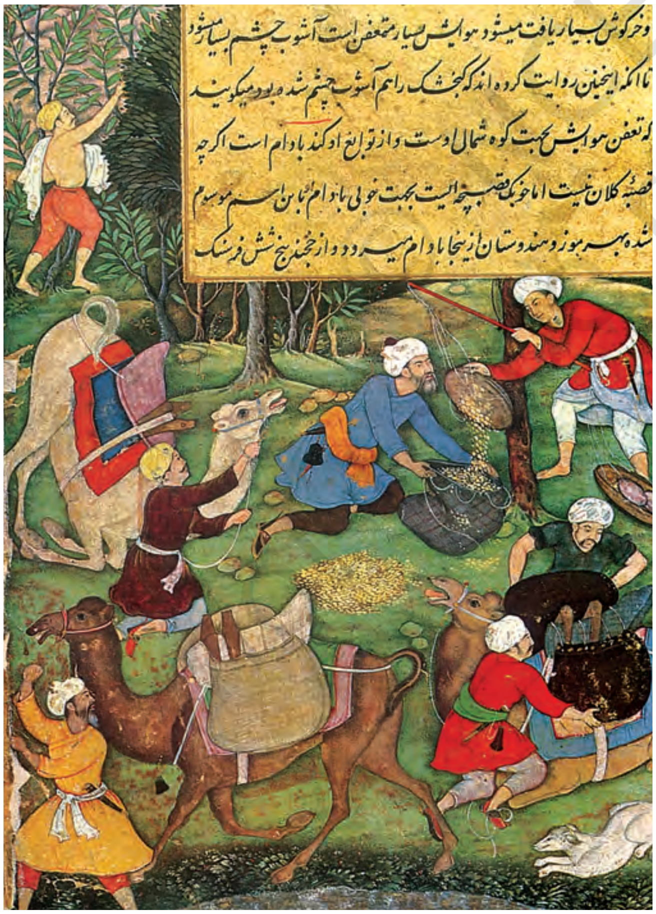

चित्र 3

घुमंतू व्यापारियों की शृंखलाएँ भारत को बाहरी दुनिया से जोड़ती थीं। यहाँ मेवा इकट्ठा करके उसे ऊँटों पर लादा जा रहा है। मध्य एशिया के व्यापारी ऐसी वस्तुएँ भारत लाते थे और बंजारे एवं अन्य व्यापारी उन्हें स्थानीय बाज़ारों तक पहुँचाते थे।

2024-25

जानवरों पर सामानों की ढुलाई का काम भी करते थे। एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते वे सामानों की खरीद-फ़रोख्त करते थे।

बंजारा लोग सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापारी-खानाबदोश थे। उनका कारवाँ 'टांडा' कहलाता था। सुलतान अलाउद्दीन ख़लजी (अध्याय 3) बंजारों का ही इस्तेमाल नगर के बाज़ारों तक अनाज की ढुलाई के लिए करते थे। बादशाह जहाँगीर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि बंजारे विभिन्न इलाकों से अपने बैलों पर अनाज ले जाकर शहरों में बेचते थे। सैन्य अभियानों के दौरान वे मुग़ल सेना के लिए खाद्यान्नों की ढुलाई का काम करते थे। किसी भी विशाल सेना के लिए 1,00,000 बैल अनाज ढोते होंगे।

बंजारे

सत्रहवीं सदी के आरंभ में भारत आने वाले एक अँग्रेज़ व्यापारी, पीटर मुंडी, ने बंजारों का वर्णन किया:

सुबह हमारी मुलाकात बंजारों की एक टांडा से हुई जिसमें 14,000 बैल थे। सारे पशु गेहूँ और चावल जैसे अनाजों से लदे हुए थे... ये बंजारे लोग अपनी पूरी घर-गृहस्थी–बीवी और बच्चे–अपने साथ लेकर चलते हैं। एक टांडा में कई परिवार होते हैं। उनका जीने का तरीका उन भारवाहकों से मिलता-जुलता है जो लगातार एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते हैं। गाय-बैल उनके अपने होते हैं। कई बार वे सौदागरों के द्वारा भाड़े पर नियुक्त किए जाते हैं, लेकिन ज़्यादातर वे खुद सौदागर होते हैं। अनाज जहाँ सस्ता उपलब्ध है, वहाँ से वे खरीदते हैं और उस जगह ले जाते हैं जहाँ वह महँगा है। वहाँ से वे फिर ऐसी चीज़ें लाद लेते हैं जो किसी और जगह मुनाफ़े के साथ बेची जा सकती हैं...टांडा में छह से सात सौ तक लोग हो सकते हैं... वे एक दिन में 6 या 7 मील से ज़्यादा सफ़र नहीं करते–यहाँ तक कि ठंडे मौसम में भी। अपने गाय-बैलों पर से सामान उतारने के बाद वे उन्हें चरने के लिए खुला छोड़ देते हैं, क्योंकि यहाँ जमीन पर्याप्त है और उन्हें रोकने वाला कोई नहीं।

? *पता करें कि आजकल गाँव से शहरों तक अनाज ले जाने का काम कैसे होता है। बंजारों के तौर-तरीकों से यह किन मायनों में भिन्न या समान हैं?*

खानाबदोश और भ्रमणशील समूह

खानाबदोश घुमंतू लोग होते हैं। उनमें से कई पशुचारी होते हैं जो अपनी रेवड़ और पशुवृंद के साथ एक चरागाह से दूसरे चरागाह घूमते रहते हैं। इसी तरह दस्तकार, फेरीवाले और नृतक-गायक एवं अन्य तमाशबीन भ्रमणशील समूह अपना कामधंधा करते-करते एक जगह से दूसरी जगह की यात्र पर रहते हैं। खानाबदोश और भ्रमणशील समूह, दोनों अकसर उस जगह लौट कर आते हैं जहाँ उन्होंने पिछले साल दौरा किया था।

not to be republished © NCERT

चित्र 4
कांस्य मगरमच्छ कुट्टिया कोंड जनजाति, उड़ीसा

कई पशुचारी जनजातियाँ मवेशी और घोड़ों, जैसे जानवरों को पालने-पोसने और संपन्न लोगों के हाथ उन्हें बेचने का काम करती थीं। छोटे-मोटे फेरीवालों की विभिन्न जातियाँ भी एक गाँव से दूसरे गाँव भ्रमण करती थीं। ये लोग रस्सी, सरकंडे की चीज़ें, फूस की चटाई और मोटे बोरे जैसे माल बनाते और बेचते थे। कभी-कभी भिक्षुक लोग भी घूमंतू सौदागरों का काम करते थे। नर्तकों, गायकों और अन्य तमाशबीनों की भी जातियाँ थीं जो विभिन्न नगरों और गाँवों में कमाई के लिए अपनी कला का प्रदर्शन करती थीं।

बदलता समाज – नयी जातियाँ और श्रेणियाँ

जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था और समाज की ज़रूरतें बढ़ती गईं, नए हुनर वाले लोगों की आवश्यकता पड़ी। वर्णों के भीतर छोटी-छोटी जातियाँ उभरने लगीं। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों के बीच नयी जातियाँ सामने आईं। दूसरी ओर, कई जनजातियों और सामाजिक समूहों को जाति-विभाजित समाज में शामिल कर लिया गया और उन्हें जातियों का दर्जा दे दिया गया। विशेषज्ञता प्राप्त शिल्पियों– सुनार, लोहार, बढ़ई और राजमिस्त्री–को भी ब्राह्मणों द्वारा जातियों के रूप में मान्यता दे दी गई। वर्ण की बजाय जाति, समाज के संगठन का आधार बनी।

जाति पर विचार-विमर्श

वर्तमान तमिलनाडु के तिरूचिरापल्ली ताल्लुक में स्थित उईयाकोंडन उदेयार के बारहवीं शताब्दी के अभिलेख में ब्राह्मणों की एक सभा (अध्याय 2) के विचार-विमर्श का वर्णन मिलता है।

वे रथकारों (शाब्दिक अर्थ, रथ बनाने वाले लोग) की सामाजिक स्थिति पर विचार-विमर्श कर रहे थे। उन्होंने इस जाति के कामकाज तय किए जिनमें वास्तुकला, रथों और गाड़ियों का निर्माण, मंदिर द्वार बनाना, मूर्तियाँ स्थापित करना, बलि के लिए लकड़ियों से बने साज-सामान तैयार करना, मंडप बनाना और राजा के लिए ज़ेवर बनाना शामिल थे।

© NCERT not to be republished

ग्यारहवीं और बारहवीं सदी तक आते-आते क्षत्रियों के बीच नए राजपूत गोत्रों की ताकत में काफ़ी इजाफ़ा हुआ। वे हूण, चंदेल, चालुक्य और कुछ दूसरी वंश-परंपराओं से आते थे। इनमें से कुछ पहले जनजातियों में आते थे और बाद में कई कुल राजपूत मान लिए गए। धीरे-धीरे उन्होंने पुराने शासकों की जगह ले ली विशेषतः कृषि वाले क्षेत्रों में। यहाँ कई तरह के परिवर्तन हो रहे थे और शासकों ने शक्तिशाली राज्यों के निर्माण में अपनी संपदा का इस्तेमाल किया।

शासकों के रूप में राजपूत गोत्रों के उदय के उदाहरण का जनजातीय लोगों ने अनुसरण किया। धीरे-धीरे ब्राह्मणों के समर्थन से कई जनजातियाँ, जाति व्यवस्था का हिस्सा बन गईं। लेकिन केवल प्रमुख जनजातीय परिवार ही शासक वर्ग में शामिल हो पाए। उनकी बहुसंख्यक आबादी, समाज की छोटी जातियों में ही जगह बना पाई। दूसरी तरफ़ पंजाब, सिंध और उत्तर-पश्चिमी सरहद की प्रभुत्वशाली जनजातियों ने काफ़ी पहले इस्लाम को अपना लिया था। वे जाति व्यवस्था को नकारते रहे। सनातनी हिंदू धर्म के द्वारा प्रस्तावित गैर-बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था इन इलाकों में बड़े पैमाने पर स्वीकार नहीं की गई।

राज्यों की उत्पत्ति, जनजातीय लोगों के बीच हुए सामाजिक बदलाव से गहराई से संबंधित है। हमारे इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण हिस्से के दो उदाहरण नीचे उल्लिखित हैं।

नज़दीक से एक नज़र

गोंड

गोंड लोग, गोंडवाना नामक विशाल वनप्रदेश में रहते थे। वे **स्थानांतरीय कृषि** अर्थात् जगह बदल-बदल कर खेती करते थे। विशाल गोंड जनजाति कई छोटे-छोटे कुलों में भी बँटी हुई थी। प्रत्येक कुल का अपना राजा या राय होता था। जिस समय दिल्ली के सुलतानों की ताकत घट रही थी, उसी समय कुछ बड़े गोंड राज्य छोटे गोंड सरदारों पर हावी होने लगे थे। अकबर के शासनकाल के एक इतिहास *अकबरनामा* में उल्लिखित है कि गढ़ कटंगा के गोंड राज्य में 70,000 गाँव थे।

इन राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था केंद्रीकृत हो रही थी। राज्य, गढ़ों में विभाजित थे। हर गढ़ किसी खास गोंड कुल के नियंत्रण में था। ये पुनः चौरासी गाँवों की इकाइयों में विभाजित होते थे, जिन्हें चौरासी कहा

चित्र 5
गोंड महिला

स्थानांतरीय कृषि
किसी वनप्रांत के पेड़ों और झाड़ियों को पहले काटा और जलाया जाता है। उसकी राख में ही फ़सल बो दी जाती है। जब यह ज़मीन अपनी उर्वरता खो देती है, तब ज़मीन का दूसरा टुकड़ा साफ़ किया जाता है और इसी तरह से फ़सल उगाई जाती है।

मानचित्र 2
गोंडवाना

जाता था। चौरासी का उप-विभाजन बरहोतों में होता था, जो बारह-बारह गाँवों को मिला कर बनते थे।

बड़े राज्यों के उदय ने गोंड समाज के चरित्र को बदल डाला। उनका मूलतः बराबरी वाला समाज धीरे-धीरे असमान सामाजिक वर्गों में विभाजित हो गया। ब्राह्मण लोगों ने गोंड राजाओं से अनुदान में भूमि प्राप्त की और अधिक प्रभावशाली बन गए। गोंड सरदारों को अब राजपूतों के रूप में मान्यता प्राप्त करने की चाहत हुई। इसलिए गढ़ कटंगा के गोंड राजा अमन दास ने संग्राम शाह की उपाधि धारण की। उसके पुत्र दलपत ने महोबा के चंदेल राजपूत राजा सालबाहन की पुत्री राजकुमारी दुर्गावती से विवाह किया।

दलपत की मृत्यु कम उम्र में ही हो गई। रानी दुर्गावती बहुत योग्य थी और उसने अपने पाँच साल के पुत्र बीर नारायण के नाम पर शासन की कमान सँभाली। उसके समय में राज्य का और अधिक विस्तार हुआ। 1565 में आसिफ़ खान के नेतृत्व में मुग़ल सेनाओं ने गढ़ कटंगा पर हमला किया। रानी दुर्गावती ने इसका जम कर सामना किया। उसकी हार हुई और उसने समर्पण

चित्र 6
एक नक्काशीदार दरवाज़ा, गोंड जनजाति, बस्तर क्षेत्र, मध्य प्रदेश

© NCERT not to be republished

करने की बजाय मर जाना बेहतर समझा। उसका पुत्र भी तुरंत बाद लड़ता हुआ मारा गया।

गढ़ कटंगा एक समृद्ध राज्य था। इसने हाथियों को पकड़ने और दूसरे राज्यों में उनका निर्यात करने के व्यापार में ख़ासा धन कमाया। जब मुग़लों ने गोंडों को हराया, तो उन्होंने लूट में बेशकीमती सिक्के और हाथी बहुतायत में हथिया लिए। उन्होंने राज्य का एक भाग अपने कब्ज़े में ले किया और शेष बीर नारायण के चाचा चंदर शाह को दे दिया। गढ़ कटंगा के पतन के बावज़ूद गोंड राज्य कुछ समय तक चलता रहा। लेकिन वे काफ़ी कमज़ोर हो गए और बाद में अधिक शक्तिशाली बुंदेलों और मराठों के खिलाफ़ उनके संघर्ष असफल रहे।

अहोम

अहोम लोग मौजूदा म्यानमार से आकर तेरहवीं सदी में ब्रह्मपुत्र घाटी में आ बसे। उन्होंने भुइयाँ (भूस्वामी) लोगों की पुरानी राजनीतिक व्यवस्था का दमन करके नए राज्य की स्थापना की। सोलहवीं सदी के दौरान उन्होंने चुटियों (1523) और कोच-हाजो (1581) के राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया। उन्होंने कई अन्य जनजातियों को भी अधीन कर लिया। अहोमों ने एक बड़ा राज्य बनाया और इसके लिए 1530 के दशक में ही, इतने वर्षों पहले, आग्नेय अस्त्रों का इस्तेमाल किया। 1660 तक आते-आते वे उच्चस्तरीय बारूद और तोपों का निर्माण करने में सक्षम हो गए थे।

लेकिन अहोम लोगों को दक्षिण-पश्चिम से कई आक्रमणों का सामना करना पड़ा। 1662 में मीर जुमला के नेतृत्व में मुग़लों ने अहोम राज्य पर हमला किया। बहादुरी से सामना करने के बावज़ूद अहोम लोगों की पराजय हुई। लेकिन उस क्षेत्र पर मुग़लों का प्रत्यक्ष नियंत्रण ज़्यादा समय तक बना नहीं रह सका।

असम में लाचित बरफुकन ने मुग़ल सेना को हराया

लाचित बरफुकन अहोम सेना के सेनापति थे। 1671 में सरायघाट के युद्ध में लाचित बरफुकन ने मुग़ल शासक औरंगजेब की सेना को पराजित किया था। मुग़ल सेना में 18000 घुड़सवार, 30000 सैनिक, 15000 तीरंदाज, 5000 बंदूक सैनिक और 1000 तोप थे। जिसका नेतृत्व अंबर के शासक राम सिंह द्वारा किया गया था। लाचित के सैन्य कौशल से मुग़ल सेना के विस्तार पर रोक लग गई। नौसेना द्वारा ब्रहमपुत्र नदी में लड़ी गई यह लड़ाई इतिहास में सरायघाट के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

(स्रोत: लचित बरफुफन, जनसंयोग असम, डायरेक्टोरेट ऑफ इन्फारमेशन एण्ड पब्लिक रिलेशंस, गवर्नमेंट ऑफ असम, दिसपुर गुवाहाटी

मानचित्र 3

पूर्वी भारत की जनजातियाँ

© NCERT not to be republished

चित्र 7
कान के आभूषण, कबोई नागा जनजाति, मणिपुर

अहोम राज्य, बेगार पर निर्भर था। राज्य के लिए जिन लोगों से जबरन काम लिया जाता था, वे 'पाइक' कहलाते थे। अहोम राज्य में एक जनगणना की गई थी। प्रत्येक गाँव को अपनी बारी आने पर निश्चित संख्या में पाइक भेजने होते थे। इसके लिए जनगणना के बाद सघन आबादी वाले इलाकों से कम आबादी वाले इलाकों में लोगों को स्थानांतरित किया गया था। इस प्रकार अहोम कुल टूट गए। सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध पूरा होते-होते प्रशासन खासा केंद्रीकृत हो चुका था।

लगभग सभी वयस्क पुरुष युद्ध के दौरान सेना में अपनी सेवाएँ प्रदान करते थे। दूसरे समय में वे बाँध, सिचाई व्यवस्था इत्यादि के निर्माण या अन्य सार्वजनिक कार्यों में जुटे रहते थे। अहोम लोग चावल की खेती के नए तरीके भी अमल में लाए।

अहोम समाज, कुलों में विभाजित था, जिन्हें 'खेल' कहा जाता था। वहाँ दस्तकारों की बहुत कम जातियाँ थीं। इसलिए अहोम क्षेत्र में दस्तकार निकटवर्ती क्षेत्रों से आए थे। एक खेल के नियंत्रण में प्रायः कई गाँव होते थे। किसान को अपने ग्राम समुदाय के द्वारा ज़मीन दी जाती थी। समुदाय की सहमति के बगैर राजा तक इसे वापस नहीं ले सकता था।

शुरुआत में अहोम लोग, अपने जनजातीय देवताओं की उपासना करते थे। लेकिन सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ब्राह्मणों के प्रभाव में बढ़ोत्तरी हुई। मंदिरों और ब्राह्मणों को राजा के द्वारा भूमि अनुदान में दी गई। सिब सिंह (1714–44) के काल में हिंदू धर्म वहाँ का प्रधान धर्म बन गया था। लेकिन अहोम राजाओं ने हिंदू धर्म को अपनाने के बाद अपनी पारंपरिक आस्थाओं को पूरी तरह से नहीं छोड़ा था।

?

आपके विचार में मुग़लों ने अहोम प्रदेश को जीतने का प्रयास क्यों किया?

अहोम समाज, एक अत्यंत परिष्कृत समाज था। कवियों और विद्वानों को अनुदान में ज़मीन दी जाती थी। नाट्य-कर्म को प्रोत्साहन दिया जाता था। संस्कृत की महत्त्वपूर्ण कृतियों का स्थानीय भाषा में अनुवाद किया गया था। *बुरंजी* नामक ऐतिहासिक कृतियों को पहले अहोम भाषा में और फिर असमिया में लिखा गया था।

निष्कर्ष

जिस युग की हम चर्चा करते आए हैं, उस युग के दौरान उपमहाद्वीप में काफ़ी सामाजिक परिवर्तन हुआ। वर्ण आधारित समाज और जनजातीय

2024-25

© NCERT not to be republished

लोग एक-दूसरे के साथ लगातार संपर्क में आते रहे। इस आदान-प्रदान ने दोनों तरह के समाजों में अनुकूलन और बदलाव की प्रक्रिया चलाई। बहुत-सी विभिन्न प्रकार की जनजातियाँ थीं और उन्होंने विभिन्न प्रकार की जीविकाएँ अपनाईं। कालांतर में उनमें से कई जाति आधारित समाज में शामिल हो गईं। लेकिन कईयों ने जाति व्यवस्था और सनातनी हिंदू धर्म, दोनों को ही नकार दिया। कुछ जनजातियों ने सुसंगठित प्रशासनिक व्यवस्था वाले विस्तृत राज्यों की स्थापना की। इस तरह वे राजनीतिक रूप से ताकतवर हो गए। इसने उन्हें बृहत्तर और अधिक जटिल राज्यों और साम्राज्यों के साथ संघर्ष की स्थिति में ला खड़ा किया।

कल्पना करें

आप एक ऐसे खानाबदोश समुदाय के सदस्य हैं, जो हर तीन महीने बाद अपना निवासस्थान बदलता है। इसका आपके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

फिर से याद करें

1. निम्नलिखित में मेल बैठाएँ:

गढ़	खेल
टांडा	चौरासी
श्रमिक	कारवाँ
कुल	गढ़ कटंगा
सिब सिंह	अहोम राज्य
दुर्गावती	पाइक

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

   (क) वर्णों के भीतर पैदा होती नयी जातियाँ ____________ कहलाती थीं।

बीज शब्द

वर्ण
जाति
टांडा
गढ़
चौरासी
बरहोत
भुइयाँ
पाइक
खेल
बुरंजी
जनगणना

© NCERT not to be republished

(ख) ____________________ अहोम लोगों के द्वारा लिखी गई ऐतिहासिक कृतियाँ थीं।

(ग) ____________________ ने इस बात का उल्लेख किया है कि गढ़ कटंगा में 70,000 गाँव थे।

(घ) बड़े और ताकतवर होने पर जनजातीय राज्यों ने __________ और ______________ को भूमि-अनुदान दिए।

3. सही या गलत बताइए:

(क) जनजातीय समाजों के पास समृद्ध वाचक परंपराएँ थीं।

(ख) उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग में कोई जनजातीय समुदाय नहीं था।

(ग) गोंड राज्यों में अनेक नगरों को मिला कर चौरासी बनता था।

(घ) भील, उपमहाद्वीप के उत्तर-पूर्वी भाग में रहते थे।

4. खानाबदोश पशुचारकों और एक जगह बसे हुए खेतिहरों के बीच किस तरह का विनिमय होता था?

आइए समझें

5. अहोम राज्य का प्रशासन कैसे संगठित था?

6. वर्ण आधारित समाज में क्या परिवर्तन आए?

7. एक राज्य के रूप में संगठित हो जाने के बाद जनजातीय समाज कैसे बदला?

आइए विचार करें

8. क्या बंजारे लोग अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण थे?

9. गोंड लोगों का इतिहास, अहोमों के इतिहास से किन मायनों में भिन्न था? क्या कोई समानता भी थी?

© NCERT not to be republished

आइए करके देखें

10. एक मानचित्र पर इस अध्याय में उल्लिखित जनजातियों के इलाकों को चिह्नित करें। किन्हीं दो के संबंध में यह चर्चा करें कि क्या उनके जीविकोपार्जन का तरीका अपने-अपने इलाकों की भौगोलिक विशेषताओं और पर्यावरण के अनुरूप था?

11. जनजातीय समूहों के संबंध में मौजूदा सरकारी नीतियों का पता लगाएँ और उनके बारे में एक बहस का आयोजन करें।

12. उपमहाद्वीप में वर्तमान खानाबदोश पशुचारी समूहों के बारे में और पता लगाएँ। वे कौन-से जानवर रखते हैं? वे प्रायः किन इलाकों में जाते रहते हैं?

© NCERT not to be republished

6 ईश्वर से अनुराग

0761CH06

भक्ति की शुरुआत
इन्हीं दिनों देवी-देवताओं की पूजा का चलन भी शुरू हुआ। बाद में हिन्दू धर्म की यह प्रमुख पहचान बन गई। इनमें शिव, विष्णु और दुर्गा जैसे देवी-देवता शामिल हैं। इन देवी-देवताओं की पूजा भक्ति परम्परा के माध्यम से की जाती थी। भक्ति उस समय काफी लोकप्रिय परम्परा बन गई। किसी देवी या देवता के प्रति श्रद्धा को ही भक्ति कहा जाता है। भक्ति का पथ सबके लिए खुला था, चाहे वह धनी हो या गरीब, ऊँची जाति का हो या नीची जाति का, स्त्री हो या पुरुष।

भक्ति मार्ग की चर्चा हिन्दुओं के पवित्र ग्रंथ 'भगवद्गीता' में की गई है।

आपने लोगों को पूजा-पाठ करते अथवा भजन, कीर्तन या कव्वाली गाते या चुपचाप ईश्वर के नाम का जाप करते हुए देखा होगा। आपने यह भी गौर किया होगा कि उनमें से कुछ तो इतने भाव-विभोर हो जाते हैं कि उनकी आँखों में आँसू भर आते हैं। ईश्वर के प्रति ऐसा प्रेम-भाव या गहरी भक्ति उन विभिन्न प्रकार के भक्ति तथा सूफ़ी आंदोलनों की देन है, जिनका आठवीं शताब्दी से उद्भव होने लगा।

परमेश्वर का विचार

बड़े-बड़े राज्यों के उदय होने से पहले, भिन्न-भिन्न समूहों के लोग अपने-अपने देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे। जब लोग, नगरों के विकास और व्यापार तथा साम्राज्यों के माध्यम से एक साथ आते गए, तब नए-नए विचार विकसित होने लगे। यह बात व्यापक रूप से स्वीकार की जाने लगी कि सभी जीवधारी अच्छे तथा बुरे कर्म करते हुए जीवन-मरण और पुनर्जीवन के अनंत चक्रों से गुजरते हैं। इसी प्रकार यह विचार भी गहरे बैठ गया था कि सभी व्यक्ति जन्म के समय भी एक बराबर नहीं होते हैं। यह मान्यता कि सामाजिक विशेषाधिकार किसी उच्च परिवार अथवा ऊँची जाति में पैदा होने के कारण मिलते हैं, कई पांडित्यपूर्ण ग्रंथों का विषय था।

अनेक लोग ऐसे विचारों के कारण बेचैन थे। इसलिए वे बुद्ध तथा जैनों के उपदेशों की ओर उन्मुख हुए, जिनके अनुसार व्यक्तिगत प्रयासों से सामाजिक अंतरों को दूर किया जा सकता है और पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा पाया जा सकता है। कुछ अन्य लोग परमेश्वर संबंधी इस विचार से आकर्षित हुए कि यदि मनुष्य भक्तिभाव से परमेश्वर की शरण में जाए, तो परमेश्वर, व्यक्ति को इस बंधन से मुक्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्त यह विचार, सामान्य सन् (ईसवी सन्) की प्रारंभिक शताब्दियों में लोकप्रिय हो गया था।

© NCERT not to be republished

विशद् धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से शिव, विष्णु तथा दुर्गा को परम देवी-देवताओं के रूप में पूजा जाने लगा। साथ-साथ, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पूजे जाने वाले देवों एवं देवियों को शिव, विष्णु या दुर्गा का रूप माना जाने लगा। इसी प्रक्रिया में स्थानीय मिथक तथा किस्से-कहानियाँ पौराणिक कथाओं के अंग बन गए। पुराणों में पूजा की जिन पद्धतियों की अनुशंसा की गई थी, उन्हें स्थानीय पंथों में भी अपनाया जाने लगा। आगे चलकर पुराणों में भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि भक्त भले ही किसी भी जाति-पाँति का हो, वह सच्ची भक्ति से ईश्वर की कृपा प्राप्त कर सकता है। भक्ति की विचारधारा इतनी अधिक लोकप्रिय हो गई कि बौद्धों और जैन मतावलंबियों ने भी इन विश्वासों को अपना लिया।

चित्र 1
दक्षिण भारतीय पांडुलिपि से लिया गया भगवद्गीता का एक पृष्ठ

?

आज भी आप स्थानीय मिथक तथा किस्से-कहानियों की इस प्रक्रिया को व्यापक स्वीकृति पाते हुए देख सकते हैं। क्या आप अपने आस-पास कुछ ऐसे उदाहरण ढूँढ सकते हैं?

दक्षिण भारत में भक्ति — नयनार और अलवार

सातवीं से नौवीं शताब्दियों के बीच कुछ नए धार्मिक आंदोलनों का प्रादुर्भाव हुआ। इन आंदोलनों का नेतृत्व नयनारों (शैव संतों) और अलवारों (वैष्णव संतों) ने किया। ये संत सभी जातियों के थे, जिनमें पुलैया और पनार जैसी 'अस्पृश्य' समझी जाने वाली जातियों के लोग भी शामिल थे। वे बौद्धों और जैनों के कटु आलोचक थे और शिव तथा विष्णु के प्रति सच्चे प्रेम को मुक्ति का मार्ग बताते थे। उन्होंने संगम साहित्य (तमिल साहित्य का प्राचीनतम उदाहरण और सामान्य सन् यानी ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में रचित) में समाहित प्यार और शूरवीरता के आदर्शों को अपना कर भक्ति के मूल्यों में उनका समावेश किया था। नयनार और अलवार घुमक्कड़ साधु-संत थे। वे जिस किसी स्थान या गाँव में जाते थे, वहाँ के स्थानीय देवी-देवताओं की प्रशंसा में सुंदर कविताएँ रचकर उन्हें संगीतबद्ध कर दिया करते थे।

© NCERT not to be republished

नयनार और अलवार

कुल मिलाकर 63 नयनार ऐसे थे, जो कुम्हार, 'अस्पृश्य' कामगार, किसान, शिकारी, सैनिक, ब्राह्मण और मुखिया जैसी अनेक सामाजिक पृष्ठभूमि में पैदा हुए थे। उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध थे– अप्पार, संबंदर, सुंदरार और माणिक्कवसागार। उनके गीतों के दो संकलन हैं– *तेवरम्* और *तिरुवाचकम्*।

अलवार संत संख्या में 12 थे। वे भी भिन्न-भिन्न प्रकार की पृष्ठभूमि से आए थे। उनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध थे– पेरियअलवार, उनकी पुत्री अंडाल, तोंडरडिप्पोडी अलवार और नम्मालवार। उनके गीत *दिव्य प्रबंधम्* में संकलित हैं।

धार्मिक जीवनी/संत जीवनी लेखन
संतों की जीवनियाँ लिखना

दसवीं से बारहवीं सदियों के बीच, चोल और पांड्यन राजाओं ने उन अनेक धार्मिक स्थलों पर विशाल मंदिर बनवा दिए, जहाँ की संत-कवियों ने यात्रा की थी। इस प्रकार भक्ति परंपरा और मंदिर पूजा के बीच गहरे संबंध स्थापित हो गए। यही वह समय था, जब उनकी कविताओं का संकलन तैयार किया गया था। इसके अलावा अलवारों तथा नयनार संतों की **धार्मिक जीवनियाँ** भी रची गईं। आज हम भक्ति परंपरा के इतिहास लेखन में इन जीवनियों का स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं।

चित्र 2
माणिक्कवसागार की एक काँस्य प्रतिमा

भक्त और भगवान

माणिक्कवसागार की एक रचना:

मेरे हाड-माँस के इस घृणित पुतले में
तुम आए, जैसे यह कोई सोने का मंदिर हो,
मेरे कृपालु प्रभु, मेरे विशुद्धतम रत्न,
तुमने मुझे सांत्वना देकर बचा लिया।
तुमने मेरा दुःख, मेरा जन्म-मृत्यु का कष्ट और माया-मोह
हर लिया और मुझे मुक्त कर दिया।
हे ब्रह्मानंद, हे प्रकाशमय, मैंने तुम में शरण ली है
और मैं तुम से कभी दूर नहीं हो सकता।

? *कवि ने भगवान के साथ अपने संबंध का कैसा वर्णन किया है?*

© NCERT not to be republished

दर्शन और भक्ति

भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली दार्शनिकों में से एक शंकर का जन्म आठवीं शताब्दी में केरल प्रदेश में हुआ था। वे अद्वैतवाद के समर्थक थे, जिसके अनुसार जीवात्मा और परमात्मा (जो परम सत्य है), दोनों एक ही हैं। उन्होंने यह शिक्षा दी कि ब्रह्म, जो एकमात्र या परम सत्य है, वह निर्गुण और निराकार है। शंकर ने हमारे चारों ओर के संसार को मिथ्या या माया माना और संसार का परित्याग करने अर्थात् संन्यास लेने और ब्रह्म की सही प्रकृति को समझने और मोक्ष प्राप्त करने के लिए ज्ञान के मार्ग को अपनाने का उपदेश दिया।

रामानुज ग्यारहवीं शताब्दी में तमिलनाडु में पैदा हुए थे। वे विष्णुभक्त अलवार संतों से बहुत प्रभावित थे। उनके अनुसार मोक्ष प्राप्त करने का उपाय विष्णु के प्रति अनन्य भक्ति भाव रखना है। भगवान विष्णु की कृपा दृष्टि से भक्त उनके साथ एकाकार होने का परमानंद प्राप्त कर सकता है। रामानुज ने विशिष्टताद्वैत के सिद्धांत को प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार आत्मा, परमात्मा से जुड़ने के बाद भी अपनी अलग सत्ता बनाए रखती है। रामानुज के सिद्धांत ने भक्ति की नयी धारा को बहुत प्रेरित किया, जो परवर्ती काल में उत्तरी भारत में विकसित हुई।

? शंकर या रामानुज के विचारों के बारे में कुछ और पता लगाने का प्रयत्न करें।

बसवन्ना का वीरशैववाद

हमने पहले पढ़ा कि तमिल भक्ति आंदोलन और मंदिर पूजा के बीच क्या संबंध थे। इसके परिणामस्वरूप जो प्रतिक्रिया हुई, वह बसवन्ना और अल्लमा प्रभु और अक्कमहादेवी जैसे उसके साथियों द्वारा प्रारंभ किए गए वीरशैव आंदोलन में स्पष्टतः दिखलाई देती है। यह आंदोलन बारहवीं शताब्दी के मध्य में कर्नाटक में प्रारंभ हुआ था। वीरशैवों ने सभी व्यक्तियों की समानता के पक्ष में और जाति तथा नारी के प्रति व्यवहार के बारे में ब्राह्मणवादी विचारधारा के विरुद्ध अपने प्रबल तर्क प्रस्तुत किए। इसके अलावा वे सभी प्रकार के कमर्कांडों और मूर्तिपूजा के विरोधी थे।

© NCERT not to be republished

वीरशैवों के वचन

नीचे कुछ वचन या कथन दिए गए हैं, जो बसवन्ना के बताए जाते हैं:

धनवान लोग
शिव के लिए मंदिर बनाते हैं।
मैं
एक गरीब आदमी
क्या करूँगा?

मेरी टाँगें खंभे हैं,
शरीर तीर्थ मंदिर है
सिर उसकी छतरी है
सोने की बनी हुई।

जरा सुनो, नदी संगम के प्रभु,
खड़ी हुई चीज़ें कभी गिर जाएँगी,
लेकिन चलने वाली सदा चलती रहेंगी।

? *बसवन्ना, ईश्वर को कौन-सा मंदिर अर्पित कर रहा है?*

महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम जैसे वैष्णव संत कवि भगवान विट्ठल के उपासक थे। भगवान विट्ठल की आराधना ने वारकारी संप्रदाय को जन्म दिया जो पंढरपुर की वार्षिक तीर्थयात्र पर ज़ोर देता है। विट्ठल संप्रदाय का भक्ति के शक्तिशाली उपादान के रूप में उदय हुआ तथा लोगों में काफी लोकप्रिय हुआ।

दक्कन में भक्ति आंदोलन

तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र में अनेकानेक संत कवि हुए, जिनके सरल मराठी भाषा में लिखे गए गीत आज भी जन-मन को प्रेरित करते हैं। उन संतों में सबसे महत्त्वपूर्ण थे– ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम तथा सखूबाई जैसी स्त्रियाँ तथा चोखामेळा का परिवार, जो 'अस्पृश्य' समझी जाने वाली महार जाति का था। भक्ति की यह क्षेत्रीय परंपरा पंढरपुर में विठ्ठल (विष्णु का एक रूप) पर और जन-मन के हृदय में विराजमान व्यक्तिगत देव (ईश्वर) संबंधी विचारों पर केंद्रित थी।

इन संत-कवियों ने सभी प्रकार के कर्मकांडों, पवित्रता के ढोंगों और जन्म पर आधारित सामाजिक अंतरों का विरोध किया। यहाँ तक कि उन्होंने संन्यास के विचार को भी ठुकरा दिया और किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह रोज़ी-रोटी कमाते हुए परिवार के साथ रहने और विनम्रतापूर्वक ज़रूरतमंद साथी व्यक्तियों की सेवा करते हुए जीवन बिताने को अधिक पसंद किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि असली भक्ति दूसरों के दुःखों को बाँट

© NCERT not to be republished

लेना है। इससे एक नए मानवतावादी विचार का उद्भव हुआ। जैसा कि सुप्रसिद्ध गुजराती संत नरसी मेहता ने कहा था– "वैष्णव जन तो तेने कहिए पीर पराई जाने रे।"

सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न

यह संत तुकाराम का एक 'अभंग' (मराठी भक्तिगीत) है:

जो दीन-दुखियों, पीड़ितों को
अपना समझता है
वही संत है
क्योंकि ईश्वर उसके साथ है।

वह हर एक परित्यक्त व्यक्ति को
अपने दिल से लगाए रखता है
वह एक दास के साथ भी
अपने पुत्र जैसा व्यवहार करता है।

तुकाराम का कहना है
मैं यह कहते-कहते
कभी नहीं थकूँगा
ऐसा व्यक्ति
स्वयं ईश्वर है।

यहाँ चोखामेळा के पुत्र द्वारा रचित एक '*अभंग*' दिया जा रहा है:

तुमने हमें नीची जाति का बनाया
मेरे महाप्रभु, तुम स्वयं यह स्थिति स्वीकार करके तो देखो
हमें जीवनभर जूठन खानी पड़ती है
इसके लिए मेरे प्रभु तुम्हें शर्म आनी चाहिए।

तुम तो हमारे घर में खा चुके हो
तुम इससे कैसे इंकार कर सकते हो?
चोखा का (बेटा) करमामेला पूछता है
तुमने मुझे ज़िंदगी क्यों दी?

? *इन रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक व्यवस्था के विचारों के बारे में चर्चा करें।*

© NCERT not to be republished

नाथपंथी, सिद्ध और योगी

चित्र 3
आग के आस-पास तपस्वियों का समूह

इस काल में अनेक ऐसे धार्मिक समूह उभरे, जिन्होंने साधारण तर्क-वितर्क का सहारा लेकर रूढ़िवादी धर्म के कर्मकांडों और अन्य बनावटी पहलुओं तथा समाज-व्यवस्था की आलोचना की। उनमें नाथपंथी, सिद्धाचार और योगी जन उल्लेखनीय हैं। उन्होंने संसार का परित्याग करने का समर्थन किया। उनके विचार से निराकार परम सत्य का चिंतन-मनन और उसके साथ एक हो जाने की अनुभूति ही मोक्ष का मार्ग है। इसके लिए उन्होंने योगासन, प्राणायाम और चिंतन-मनन जैसी क्रियाओं के माध्यम से मन एवं शरीर को कठोर प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर बल दिया। ये समूह खासतौर पर 'नीची' कही जाने वाली जातियों में बहुत लोकप्रिय हुए। उनके द्वारा की गई रूढ़िवादी धर्म की आलोचना ने भक्तिमार्गीय धर्म के लिए आधार तैयार किया, जो आगे चलकर उत्तरी भारत में लोकप्रिय शक्ति बना।

इस्लाम और सूफ़ी मत

संतों और सूफ़ियों में बहुत अधिक समानता थी, यहाँ तक कि यह भी माना जाता है कि उन्होंने आपस में कई विचारों का आदान-प्रदान किया और उन्हें अपनाया। सूफ़ी मुसलमान रहस्यवादी थे। वे धर्म के बाहरी आडंबरों को अस्वीकार करते हुए ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति तथा सभी मनुष्यों के प्रति दयाभाव रखने पर बल देते थे।

इस्लाम ने एकेश्वरवाद यानी एक अल्लाह के प्रति पूर्ण समर्पण का दृढ़ता से प्रचार किया। आठवीं और नवीं शताब्दी में धार्मिक विद्वानों ने पवित्र कानून (शरिया) और इस्लामिक धर्मशास्त्र के विभिन्न पहलुओं को विकसित किया। इस्लाम धीरे-धीरे और जटिल होता गया जबकि सूफ़ियों ने एक अलग रास्ता दिखाया जो ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत समर्पण पर बल दिया। सूफ़ी लोगों ने मुसलिम धार्मिक विद्वानों द्वारा निर्धारित विशद् कर्मकांड और आचार-संहिता को बहुत कुछ अस्वीकार कर दिया। वे ईश्वर के साथ ठीक उसी प्रकार जुड़े

2024-25

रहना चाहते थे, जिस प्रकार एक प्रेमी, दुनिया की परवाह किए बिना अपनी प्रियतमा के साथ जुड़े रहना चाहता है। संत-कवियों की तरह सूफ़ी लोग भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए काव्य रचना किया करते थे। गद्य में एक विस्तृत साहित्य तथा कई किस्से-कहानियाँ इन सूफ़ी संतों के इर्द-गिर्द विकसित हुईं। मध्य एशिया के महान सूफ़ी संतों में गज़्ज़ाली, रूमी और सादी के नाम उल्लेखनीय हैं। नाथपंथियों, सिद्धों और योगियों की तरह, सूफ़ी भी यही मानते थे कि दुनिया के प्रति अलग नज़रिया अपनाने के लिए दिल को सिखाया-पढ़ाया जा सकता है। उन्होंने किसी औलिया या पीर की देख-रेख में *ज़िक्र* (नाम का जाप), चिंतन, *समा* (गाना), *रक्स* (नृत्य), नीति-चर्चा, साँस पर नियंत्रण आदि के जरिए प्रशिक्षण की विस्तृत रीतियों का विकास किया। इस प्रकार आध्यात्मिक सूफ़ी उस्तादों की पीढ़ियों, सिलसिलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें से हरेक सिलसिला निर्देशों व धार्मिक क्रियाओं का थोड़ा-बहुत अलग तरीका अपनाती थी।

चित्र 4
आनंदित सूफ़ी

कश्मीर में 15वीं एवं 16वीं सदियों में सूफ़ीवाद के ऋषि पंथ का उदय हुआ। इस पंथ की स्थापना शेख नुरुद्दीन वली, जिन्हें नन्द ऋषि के नाम से भी जाना जाता है, ने की और जिसने कश्मीर के लोगों के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। ऋषि संतों को समर्पित कई स्मारक कश्मीर के कई भागों में पाए जाते हैं।

चित्र 5
कुरान की पांडुलिपि से लिया गया एक पृष्ठ, दक्कन, परवर्ती पंद्रहवीं शताब्दी

ख़ानक़ाह
सूफ़ी संस्था जहाँ सूफ़ी संत अकसर रहते भी हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी से अनेक सूफ़ी जन मध्य एशिया से आकर हिंदुस्तान में बसने लगे थे। दिल्ली सल्तनत (अध्याय 3) की स्थापना के साथ यह प्रक्रिया उस समय और भी मजबूत हो गई, जब उपमहाद्वीप में सर्वत्र बड़े-बड़े अनेक सूफ़ी केंद्र विकसित हो गए। चिश्ती सिलसिला इन सभी सिलसिलों में सबसे अधिक प्रभावशाली था। इसमें औलियाओं की एक लंबी परंपरा थी, जैसे–अजमेर के ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, दिल्ली के क़ुत्बउद्दीन बख्तियार काकी, पंजाब के बाबा फ़रीद, दिल्ली के ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया और गुलबर्ग के बंदानवाज़ गिसुदराज़।

सूफ़ी संत अपने **ख़ानक़ाहों** में विशेष बैठकों का आयोजन करते थे जहाँ सभी प्रकार के भक्तगण, जिनमें शाही घरानों के लोग तथा अभिजात और आम लोग भी शामिल होते थे। इन ख़ानक़ाहों में आते थे। वे आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करते थे। अपनी दुनियादारी की समस्याओं को सुलझाने के लिए संतों से आशीर्वाद माँगते थे अथवा संगीत तथा नृत्य के जलसों में ही शामिल होकर चले जाते थे।

अकसर लोग यह समझते थे कि सूफ़ी औलियाओं के पास चमत्कारिक शक्तियाँ होती हैं, जिनसे आम लोगों को बीमारियों और तकलीफ़ों से छुटकारा मिल सकता है। सूफ़ी संत की दरगाह एक तीर्थस्थल बन जाता था, जहाँ सभी ईमान-धर्म के लोग हज़ारों की संख्या में इकट्ठे होते थे।

चित्र 6
सभी पृष्ठभूमियों के भक्त, सूफ़ी दरगाहों पर जाते हैं।

मालिक (प्रभु) की खोज

जलालुद्दीन रूमी तेरहवीं सदी का महान सूफ़ी शायर था। वह ईरान का रहने वाला था और उसने फ़ारसी में काव्य रचना की। उसकी कृति का एक उद्धरण प्रस्तुत हैः

वह ईसाइयों की सूली पर नहीं था। मैं हिंदू मंदिरों में गया। वहाँ भी उसका कोई नामोनिशान नहीं था। न तो वह ऊँचाइयों में मिला न ही खाइयों में... मैं मक्का के क़ाबा भी गया। वह वहाँ नहीं था। मैंने उसके बारे में दार्शनिक एविसेन्ना से पूछा। वह एविसेन्ना की पहुँच से परे था... मैंने अपने दिल में झाँका। यही उसकी जगह थी। वहीं मैंने उसे पाया। वह और कहीं नहीं था।

उत्तर भारत में धार्मिक बदलाव

तेरहवीं सदी के बाद उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन की एक नयी लहर आई। यह एक ऐसा युग था, जब इस्लाम, ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म, सूफ़ीमत, भक्ति की विभिन्न धाराओं ने और नाथपंथियों, सिद्धों तथा योगियों ने परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित किया। हमने देखा कि राज्यों (अध्याय 2, 3 और 4) का उद्‌भव हो रहा था और लोग अपने लिए नए-नए व्यवसाय और नयी-नयी भूमिकाएँ खोज रहे थे। ऐसे लोग विशेष रूप से शिल्पी, कृषक, व्यापारी और मज़दूर, इन नए संतों के विचारों को सुनने के लिए इकट्ठे हो जाते थे। फिर वे उनका प्रचार करते थे।

चित्र 7
चैतन्यदेव, सोलहवीं शताब्दी के बंगाल के एक भक्ति संत। इन्होंने कृष्ण-राधा के प्रति निष्काम भक्ति-भाव का उपदेश दिया। इस चित्र में आप उनके अनुयायियों के एक समूह को आनंद में नाचते-गाते हुए देख सकते हैं।

उनमें से कबीर और बाबा गुरु नानक जैसे कुछ संतों ने सभी आडंबरपूर्ण रूढ़िवादी धर्मों को अस्वीकार कर दिया। तुलसीदास और सूरदास जैसे कुछ अन्य संतों ने उस समय विद्यमान विश्वासों तथा पद्धतियों को स्वीकार करते हुए उन्हें सब की पहुँच में लाने का प्रयत्न किया। तुलसीदास ने ईश्वर को राम के रूप में धारण किया। अवधी (पूर्वी उत्तर प्रदेश की बोली) में लिखी गई तुलसीदास की रचना *रामचरितमानस* उनके भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति और साहित्यिक कृति, दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सूरदास श्री कृष्ण के

2024-25

© NCERT not to be republished

मानचित्र 1
मुख्य भक्ति संत तथा उनसे जुड़े क्षेत्र

शंकरदेव की भक्ति का सार– "एक शरण नाम धर्म" (एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति समर्पण) के नाम से जाना गया। शंकरदेव की शिक्षाएँ भगवदगीता तथा भागवत पुराण पर आधारित हैं। उन्होंने ज्ञान के प्रसार के लिए सत्र या मठों की स्थापना को प्रोत्साहित किया। उनकी प्रमुख रचना में कीर्तनघोष शामिल हैं।

अनन्य भक्त थे। उनकी रचनाएँ *सूरसागर*, *सूरसारावली* और *साहित्य लहरी* में संग्रहित हैं एवं उनके भक्ति भाव को अभिव्यक्त करती हैं। असम के शंकरदेव (परवर्त्ती पंद्रहवीं शताब्दी) जो इन्हीं के समकालीन थे, ने विष्णु की भक्ति पर बल दिया और असमिया भाषा में कविताएँ तथा नाटक लिखे। उन्होंने ही 'नामघर' (कविता पाठ और प्रार्थना गृह) स्थापित करने की पद्धति चलाई, जो आज तक चल रही है।

इस परंपरा में दादू दयाल, रविदास और मीराबाई जैसे संत भी शामिल थे। मीराबाई एक राजपूत राजकुमारी थीं, जिनका विवाह सोलहवीं शताब्दी में मेवाड़ के एक राजसी घराने में हुआ था। मीराबाई, रविदास, जो 'अस्पृश्य' जाति के माने जाते थे, की अनुयायी बन गईं। वे कृष्ण के प्रति समर्पित थीं और उन्होंने अपने गहरे भक्ति-भाव को कई भजनों में अभिव्यक्त किया है।

© NCERT not to be republished

उनके गीतों ने 'उच्च' जातियों के रीतियों-नियमों को खुली चुनौती दी तथा ये गीत राजस्थान व गुजरात के जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय हुए।

इन संतों में से अधिकाँश का विशिष्ट अभिलक्षण यह है कि इनकी कृतियाँ क्षेत्रीय भाषाओं में रची गईं और इन्हें आसानी से गाया जा सकता था। इसीलिए ये बेहद लोकप्रिय हुईं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से चलती रहीं। प्रायः इन गीतों के प्रसारण में सर्वाधिक निर्धन, सर्वाधिक वंचित समुदाय और महिलाओं की भूमिका रही है। प्रसारण की इस प्रक्रिया में ये सभी लोग अकसर अपने अनुभव भी जोड़ देते थे। इस तरह आज मिलने वाले गीत, संतों की रचनाएँ तो हैं हीं, साथ-साथ उन पीढ़ियों के लोगों की रचनाएँ मानी जा सकती हैं, जो उन्हें गाया करते थे। वे हमारी जीती-जागती जन संस्कृति का अंग बन गई हैं।

भक्ति संतों का एक महत्वपूर्ण योगदान संगीत के विकास में था। बंगाल के जयदेव ने संस्कृत में गीत गोविन्द की रचना की, जिसमें हर गीत एक विशेष राग और ताल में रचित है। संगीत पर इन संतों का एक महत्वपूर्ण प्रभाव-भजन, कीर्तन और अंभग का प्रयोग था। इन गीतों ने, जो मनोभावनात्मक अनुभवों पर बल देतें हैं, जनमानस को ज़्यादा आकर्षित किया।

राणा के राजमहल से परे

मीरा द्वारा रचा गया गीत:

लोक लाज कुलराँ मरजादाँ जग माँ जेक णा राख्याँ री
महल अटारी हम सब त्यागे
त्याग्यो थाँरो बसनों सहर
राणाजी थे क्याँने राखो म्हाँसू बैर
बिख रो प्यालो राणाँ भेज्या,
पीवाँ मीरा हाँसा री
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो
राणा थे क्याँने राखो महाँसू बैर

? *आपके विचार से मीरा ने राणा का राजमहल क्यों छोड़ा?*

चित्र 8
मीराबाई

© NCERT not to be republished

कबीर – नज़दीक से एक नज़र

कबीर संभवतः पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी में हुए थे। वे एक अत्यधिक प्रभावशाली संत थे। उनका पालन-पोषण बनारस में या उसके आस-पास के एक मुसलमान जुलाहा यानी बुनकर परिवार में हुआ था। उनके जीवन के बारे में हमारे पास बहुत कम विश्वसनीय जानकारी है। हमें उनके विचारों की जानकारी उनकी साखियों और पदों के विशाल संग्रह से मिलती है, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि इनकी रचना तो कबीर ने की थी परंतु ये घुमंतू भजन-गायकों द्वारा गाए जाते थे। इनमें से कुछ भजन *गुरु ग्रंथ साहब*, *पंचवाणी* और *बीजक* में संग्रहित एवं सुरक्षित हैं।

सच्चे प्रभु की खोज में

कबीर की एक रचना

चित्र 9
करघे पर काम करते हुए कबीर

अलह राम जीऊँ तेरे नाँइ,
बंदे ऊपरि मिहर करो मेरे साँई।
क्या ले माटी भुँइ सूँ,
मारैं क्या जल देह न्हवाये।
जो करें मसकीन सतावे,
गून ही रहै छिपायें।।
ब्राह्मण ग्यारसि करै चौबीसौं,
काजी महरम जाँन।
ग्यारस मास जुदे क्यू कीये,
एकहि माहि समान।।
पूरबि दिसा हरी का बासा,
पछिम अलह मुकामा।
दिल ही खोजि दिलै भीतरि,
इहाँ राम रहिमानाँ।।

? *इन दोहों में दिए गए विचार किस रूप में बसवन्ना और जलालुद्दीन रूमी के विचारों से समानता या भिन्नता रखते हैं?*

2024-25

कबीर के उपदेश प्रमुख धार्मिक परंपराओं की पूर्ण एवं प्रचंड अस्वीकृति पर आधारित थे। उनके उपदेशों में ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों की बाह्य आंडबरपूर्ण पूजा के सभी रूपों का मज़ाक उड़ाया गया है। उनके काव्य की भाषा बोलचाल की हिंदी थी, जो आम आदमियों द्वारा आसानी से समझी जा सकती थी। उन्होंने कभी-कभी रहस्यमयी भाषा का भी प्रयोग किया, जिसे समझना कठिन होता है।

कबीर, निराकार परमेश्वर में विश्वास रखते थे। उन्होंने यह उपदेश दिया कि भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष यानी मुक्ति प्राप्त हो सकती है। हिंदू तथा मुसलमान दोनों लोग उनके अनुयायी हो गए।

बाबा गुरु नानक – नज़दीक से एक नज़र

कबीर की अपेक्षा बाबा गुरु नानक (1469–1539) के बारे में हम कहीं अधिक जानते हैं। तलवंडी (पाकिस्तान में ननकाना साहब) में जन्म लेने वाले बाबा गुरु नानक ने करतारपुर (रावी नदी के तट पर डेरा बाबा नानक) में एक केंद्र स्थापित करने से पहले कई यात्राएँ की। उन्होंने अपने अनुयायियों के लिए करतारपुर में एक नियमित उपासना पद्धति अपनाई, जिसके अंतर्गत उन्हीं के शबदों (भजनों) को गाया जाता था। उनके अनुयायी अपने-अपने पहले धर्म या जाति अथवा लिग-भेद को नज़रअंदाज़ करके एक सांझी रसोई में इकट्ठे खाते-पीते थे। इसे 'लंगर' कहा जाता था। बाबा गुरु नानक ने उपासना और धार्मिक कार्यों के लिए जो जगह नियुक्त की थी, उसे 'धर्मसाल' कहा गया। आज इसे गुरुद्वारा कहते हैं।

1539 में अपनी मृत्यु के पूर्व बाबा गुरु नानक ने एक अनुयायी को अपना उत्तराधिकारी चुना। इनका नाम लहणा था, लेकिन ये गुरु अंगद के नाम से जाने

चित्र 10
धार्मिक महानुभावों से चर्चा करते बाबा गुरु नानक, जब वे युवक थे।

चित्र 11
गुरु ग्रंथ साहब की एक आरंभिक पांडुलिपि

गए। 'गुरु अंगद' नाम का महत्त्व यह था कि गुरु अंगद, बाबा गुरु नानक के ही अंग माने गए। गुरु अंगद ने बाबा गुरु नानक की रचनाओं का संग्रह किया और उस संग्रह में अपनी कृतियाँ भी जोड़ दीं। संग्रह एक नई लिपि गुरमुखी में लिखा गया था। गुरु अंगद के तीन उत्तराधिकारियों ने भी अपनी रचनाएँ 'नानक' के नाम से लिखीं। इन सभी का संग्रह गुरु अर्जन ने 1604 में किया। इस संग्रह में शेख फरीद, संत कबीर, भगत नामदेव और गुरु तेग़बहादुर जैसे सूफ़ियों, संतों और गुरुओं की वाणी जोड़ी गई। 1706 में इस वृहत् संग्रह को गुरु तेगबहादुर के पुत्र व उत्तराधिकारी गुरु गोबिंद सिंह ने प्रमाणित किया। आज इस संग्रह को सिक्खों के पवित्र ग्रंथ *गुरु ग्रंथ साहब* के रूप में जाना जाता है।

सोलहवीं शताब्दी में बाबा गुरु नानक के उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में उनके अनुयायियों की संख्या का विस्तार हुआ। ये अनुयायी कई जातियों के थे, परंतु इनमें व्यापारी, कृषक और शिल्पकार ज़्यादा थे। इसकी वजह यह हो सकती है कि बाबा गुरु नानक इस बात पर बल दिया करते थे कि उनके अनुयायी गृहस्थ हों और उपयोगी व उत्पादक पेशों से जुड़े हों। अनुयायियों से यह आशा भी की जाती थी कि वे नए समुदाय के सामान्य कोष में योगदान देंगे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से केंद्रीय गुरुद्वारा हरमंदर साहब (स्वर्ण मंदिर) के आस-पास रामदासपुर शहर (अमृतसर) विकसित होने लगा था। प्रशासन में यह वस्तुतः स्वायत्त था। आधुनिक इतिहासकार इस युग के सिक्ख समुदाय को 'राज्य के अंतर्गत राज्य' मानते हैं। मुग़ल सम्राट जहाँगीर इस समुदाय को एक संभावित खतरा मानता था। उसने 1606 में गुरु अर्जन को मृत्युदण्ड देने का आदेश दिया। सत्रहवीं शताब्दी में सिक्ख आंदोलन का राजनीतिकरण शुरू हो गया, जिसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि 1699 में गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा की संस्था का निर्माण किया। 'खालसा पंथ' के नाम से जाना जाने वाला सिक्ख समुदाय अब एक राजनैतिक सत्ता बन गया।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों की बदलती हुई ऐतिहासिक परिस्थितियों ने सिक्ख आंदोलन के विकास को प्रभावित किया। शुरू से ही बाबा गुरु नानक के विचारों का सिक्ख आंदोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

2024-25

उन्होनें एक ईश्वर की उपासना के महत्त्व पर ज़ोर दिया। उन्होंने आग्रह किया कि जाति, धर्म अथवा लिंग-भेद, मुक्ति प्राप्ति के लिए कोई मायने नहीं रखते हैं। उनके लिए मुक्ति किसी निष्क्रिय आनंद की स्थिति नहीं थी, बल्कि सक्रिय जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ सामाजिक प्रतिबद्धता की निंरतर कोशिशों में ही निहित थी। अपने उपदेश के सार को व्यक्त करने के लिए उन्होंने तीन शब्दों का प्रयोग किया: *नाम, दान* और *इस्नान* (स्नान)। नाम से उनका तात्पर्य, सही उपासना से था। दान का तात्पर्य था, दूसरों का भला करना और इस्नान का तात्पर्य आचार-विचार की पवित्रता। आज उनके उपदेशों को *नाम-जपना, किर्त-करना* और *वंड-छकना* के रूप में याद किया जाता है। ये अवधारणाएँ भी उचित विश्वास और उपासना, ईमानदारीपूर्ण निर्वाह और संसाधनों को मिल-बाँटकर प्रयोग करना यानी कि दूसरों की मदद के महत्त्व को रेखांकित करती हैं। इस तरह बाबा गुरु नानक के समानता के विचारों के सामाजिक-राजनीतिक मायने थे। शायद इसी बात से हमें बाबा गुरु नानक और उनके अनुयायियों के इतिहास और कबीर, रविदास एवं दादू जैसे संतों और उनके अनुयायियों (जिनके विचार बाबा गुरु नानक के विचारों के काफ़ी करीब थे) के इतिहास में फ़र्क को समझने में मदद मिलती है।

कल्पना करें

आप एक बैठक में भाग ले रहे हैं, जहाँ एक संत जाति-व्यवस्था पर चर्चा कर रहे हैं। इस बातचीत का वर्णन करें।

फिर से याद करें

1. निम्नलिखित में मेल बैठाएँ:

बुद्ध	नामघर
शंकरदेव	विष्णु की पूजा
निज़ामुद्दीन औलिया	सामाजिक अंतरों पर सवाल उठाए
नयनार	सूफ़ी संत
अलवार	शिव की पूजा

बीज शब्द

वीरशैव मत

भक्ति

सूफ़ी

ख़ानक़ाह

© NCERT not to be republished

2. रिक्त स्थान की पूर्त्ति करें:

(क) शंकर _______________ के समर्थक थे।

(ख) रामानुज _______________ के द्वारा प्रभावित हुए थे।

(ग) ____________, ____________ और ____________ वीरशैव मत के समर्थक थे।

(घ) ____________ महाराष्ट्र में भक्ति परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था।

3. नाथपंथियों, सिद्धों और योगियों के विश्वासों और आचार-व्यवहारों का वर्णन करें।

4. कबीर द्वारा अभिव्यक्त प्रमुख विचार क्या-क्या थे? उन्होंने इन विचारों को कैसे अभिव्यक्त किया?

आइए समझें

5. सूफ़ियों के प्रमुख आचार-व्यवहार क्या थे?

6. आपके विचार से बहुत-से गुरुओं ने उस समय प्रचलित धार्मिक विश्वासों तथा प्रथाओं को अस्वीकार क्यों किया?

7. बाबा गुरु नानक की प्रमुख शिक्षाएँ क्या थीं?

आइए विचार करें

8. जाति के प्रति वीरशैवों अथवा महाराष्ट्र के संतों का दृष्टिकोण कैसा था? चर्चा करें।

9. आपके विचार से जनसाधारण ने मीरा की याद को क्यों सुरक्षित रखा?

© NCERT not to be republished

आइए करके देखें

10. पता लगाएँ कि क्या आपके आस-पास भक्ति परंपरा के संतों से जुड़ी हुई कोई दरगाह, गुरुद्वारा या मंदिर है। इनमें से किसी एक को देखने जाइए और बताइए कि वहाँ आपने क्या देखा और सुना।

11. इस अध्याय में अनेक संत कवियों की रचनाओं के उद्धरण दिए गए हैं। उनकी कृतियों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें और उनकी उन कविताओं को नोट करें, जो यहाँ नहीं दी गई हैं। पता लगाएँ कि क्या ये गाई जाती हैं। यदि हाँ, तो कैसे गाई जाती हैं और कवियों ने इनमें किन विषयों पर लिखा था।

12. इस अध्याय में अनेक संत-कवियों के नामों का उल्लेख किया गया है, परंतु कुछ की रचनाओं को इस अध्याय में शामिल नहीं किया गया है। उस भाषा के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करें, जिसमें ऐसे कवियों ने अपनी कृतियों की रचना की। क्या उनकी रचनाएँ गाई जाती थीं? उनकी रचनाओं का विषय क्या था?

© NCERT not to be republished

7 क्षेत्रीय संस्कृतियों का निर्माण

0761CH07

लोगों का वर्णन करने का एक सबसे सामान्य तरीका है उनकी बोलचाल की भाषा से उन्हें परिभाषित करना। जब हम किसी व्यक्ति को तमिल या उड़िया कहते हैं, तो आमतौर पर इसका अर्थ होता है कि वह तमिल अथवा उड़िया भाषा बोलता है और तमिलनाडु या उड़ीसा में रहता है। इसी तरह से हम प्रत्येक क्षेत्र को कुछ खास किस्म के भोजन, वस्त्र, काव्य, नृत्य, संगीत और चित्रकला से जोड़ा करते हैं। कभी-कभी हम इन अस्मिताओं को मान कर चलते हैं और सोचते हैं कि ये युग-युगांतरों से अस्तित्व में हैं। किंतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच विभाजक सीमाओं के बनने में समय की भूमिका रही है। जिन्हें हम आज क्षेत्रीय संस्कृतियाँ समझते हैं, वे समय के साथ-साथ बदली हैं (और सच तो यह है कि आज भी बदल रही हैं)। ये क्षेत्रीय संस्कृतियाँ जटिल प्रक्रिया से विकसित हुई हैं। इस प्रक्रिया के तहत स्थानीय परंपराओं और उपमहाद्वीप के अन्य भागों के विचारों के आदान-प्रदान ने एक-दूसरे को संपन्न बनाया है। जैसा कि हम देखेंगे, कुछ परंपराएँ तो कुछ विशेष क्षेत्रों की अपनी हैं, जबकि कुछ अन्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में एक समान प्रतीत होती हैं। परंतु इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य परंपराएँ एक खास इलाके के पुराने रीति-रिवाजों से तो निकली हैं, परंतु अन्य क्षेत्रों में जाकर उन्होंने एक नया रूप ले लिया है।

?

पता लगाएँ कि पिछले दस सालों में कितने नए राज्य बनाए गए हैं। क्या इनमें से प्रत्येक राज्य एक अलग क्षेत्र है?

चेर और मलयालम भाषा का विकास

आइये, भाषा और क्षेत्र के बीच अंतःसंबंध के एक उदाहरण से अपना विश्लेषण प्रारंभ करें। महोदयपुरम का चेर राज्य प्रायद्वीप के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में, जो आज के केरल राज्य का एक हिस्सा है, नौवीं शताब्दी में स्थापित किया गया। संभवतः मलयालम भाषा इस इलाके में बोली जाती थी। शासकों ने मलयालम भाषा एवं लिपि का प्रयोग अपने अभिलेखों में

© NCERT not to be republished

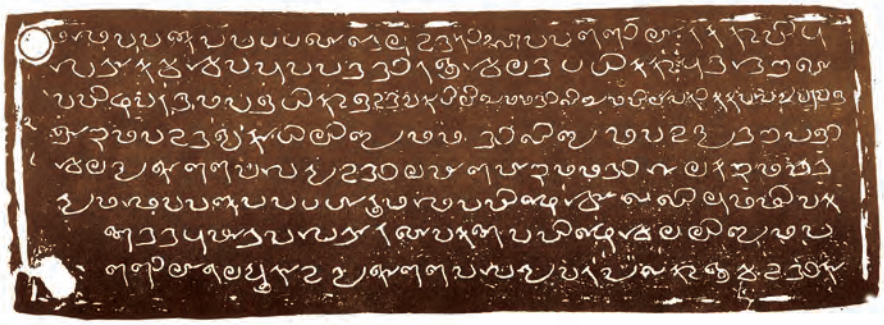

चित्र 1
मलयालम में रचित आरंभिक केरल का एक अभिलेख

किया। वस्तुतः इस भाषा का प्रयोग उपमहाद्वीप के सरकारी अभिलेखों में किसी क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग के सबसे पहले उदाहरणों में से एक है।

साथ-साथ चेर लोगों ने संस्कृत की परंपराओं से भी बहुत कुछ ग्रहण किया। केरल का मंदिर-रंगमंच, जिसकी परंपरा इस युग तक खोजी जा सकती है, संस्कृत के महाकाव्यों पर आधारित था। मलयालम भाषा की पहली साहित्यिक कृतियाँ, जो लगभग बारहवीं शताब्दी की बताई जाती हैं, प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत की ऋणी हैं। यह भी एक काफ़ी रोचक तथ्य है कि चौदहवीं शताब्दी का एक ग्रंथ लीला तिलकम, जो व्याकरण तथा काव्यशास्त्र विषयक है 'मणिप्रवालम' शैली में लिखा गया था। मणिप्रवालम का शाब्दिक अर्थ है–हीरा और मूँगा, जो यहाँ दो भाषाओं–संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषा–के साथ-साथ प्रयोग की ओर संकेत करता है।

?

पता लगाएँ कि आपके घर में आप जो भाषा/भाषाएँ बोलते हैं, उसका/उनका लेखन में सर्वप्रथम कब प्रयोग हुआ होगा।

शासक और धार्मिक परंपराएँ – जगन्नाथी संप्रदाय

अन्य क्षेत्रों में क्षेत्रीय संस्कृतियाँ, क्षेत्रीय धार्मिक परंपराओं से विकसित हुई थीं। इस प्रक्रिया का सर्वोत्तम उदाहरण है–पुरी, उड़ीसा में जगन्नाथ का संप्रदाय (जगन्नाथ का शाब्दिक अर्थ है, दुनिया का मालिक जो विष्णु का पर्यायवाची है)। आज तक जगन्नाथ की काष्ठ प्रतिमा, स्थानीय जनजातीय लोगों द्वारा बनाई जाती है जिससे यह तात्पर्य निकलता है कि जगन्नाथ मूलतः एक स्थानीय देवता थे, जिन्हें आगे चलकर विष्णु का रूप मान लिया गया।

बारहवीं शताब्दी में गंग वंश के एक अत्यंत प्रतापी राजा अनंतवर्मन ने पुरी में पुरुषोत्तम जगन्नाथ के लिए एक मंदिर बनवाने का निश्चय किया। उसके बाद 1230 में राजा अनंगभीम तृतीय ने अपना राज्य पुरुषोत्तम जगन्नाथ को अर्पित कर दिया और स्वयं को जगन्नाथ का 'प्रतिनियुक्त' घोषित किया।

चित्र 2
बालभद्र, सुभद्रा और जगन्नाथ की लघु मूर्त्तियाँ, तालपत्र की पांडुलिपि, उड़ीसा

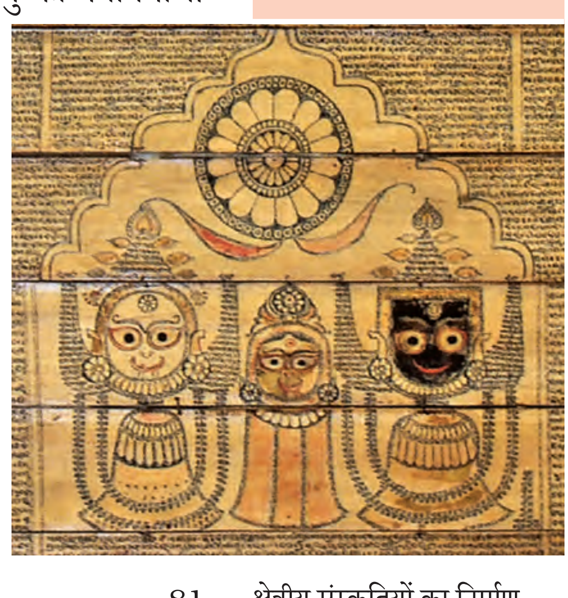

© NCERT not to be republished

चित्र 3

जगन्नाथ मंदिर, पुरी

ज्यों-ज्यों इस मंदिर को तीर्थस्थल यानी तीर्थ यात्रा के केंद्र के रूप में महत्त्व प्राप्त होता गया, सामाजिक तथा राजनीतिक मामलों में भी इसकी सत्ता बढ़ती गई। जिन्होंने भी उड़ीसा को जीता, जैसे मुग़ल, मराठे और अँग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी, सबने इस मंदिर पर अपना नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। वे सब यह महसूस करते थे कि मंदिर पर नियंत्रण प्राप्त करने से स्थानीय जनता में उनका शासन स्वीकार्य हो जाएगा।

राजपूत और शूरवीरता की परंपराएँ

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश लोग उस क्षेत्र को जहाँ आज का अधिकाँश राजस्थान स्थित है, राजपूताना कहते थे। इससे यह समझा जा सकता है कि वह एक ऐसा प्रदेश था, जहाँ केवल अथवा प्रमुख रूप से राजपूत ही रहा करते थे, लेकिन यह बात आंशिक रूप से ही सत्य है। ऐसे अनेक समूह थे (और आज भी हैं), जो उत्तरी तथा मध्यवर्ती भारत के अनेक क्षेत्रों में अपने आपको राजपूत कहते हैं। यह भी सच है कि राजस्थान में राजपूतों के अलावा अन्य लोग भी रहते हैं। तथापि, अकसर यह माना जाता है कि राजपूतों ने राजस्थान को एक विशिष्ट संस्कृति प्रदान की।

ये सांस्कृतिक परंपराएँ वहाँ के शासकों के आदर्शों तथा अभिलाषाओं के साथ घनिष्ठता से जुड़ी हुई थीं। लगभग आठवीं शताब्दी से आज के राजस्थान के अधिकांश भाग पर विभिन्न परिवारों के राजपूत राजाओं का शासन रहा। पृथ्वीराज (अध्याय 2) एक ऐसा ही शासक था। ये शासक ऐसे शूरवीरों के आदर्शों को अपने हृदय में

चित्र 4

बीकानेर के राजकुमार राजसिंह

© NCERT not to be republished

संजोए रखते थे, जिन्होंने रणक्षेत्र में बहादुरी से लड़ते हुए अकसर मृत्यु का वरण किया, मगर पीठ नहीं दिखाई। राजपूत शूरवीरों की कहानियाँ काव्यों एवं गीतों में सुरक्षित हैं ये विशेष रूप से प्रशिक्षित चारण-भाटों द्वारा गाई जाती हैं। ये काव्य एवं गीत ऐसे शूरवीरों की स्मृति को सुरक्षित रखते थे और उनसे यह आशा की जाती थी कि वे अन्य जनों को भी उन शूरवीरों का अनुकरण करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करेंगे। साधारण जन भी इन कहानियों से आकर्षित होते थे। इन कहानियों में अकसर नाटकीय स्थितियों और स्वामीभक्ति, मित्रता, प्रेम, शौर्य, क्रोध आदि प्रबल संवेगों का चित्रण होता था।

क्या स्त्रियों को भी इन कहानियों में स्थान प्राप्त था? कहीं-कहीं यह चित्रित किया गया है कि स्त्रियाँ अपने शूरवीर पतियों का जीवन-मरण, दोनों में अनुसरण करती थीं। सती प्रथा यानी विधवाओं

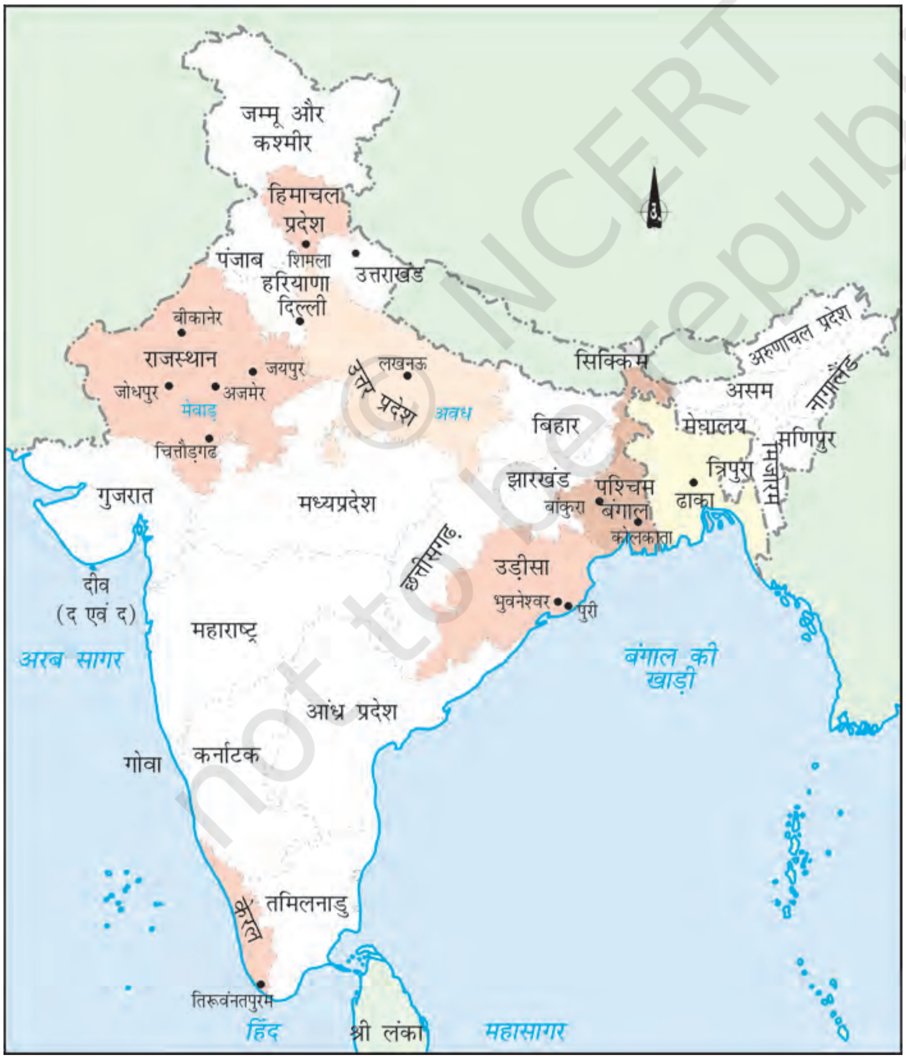

मानचित्र 1
वह क्षेत्र जिनकी इस अध्याय में चर्चा की गई है।

© NCERT not to be republished

पता लगाएँ कि क्या आपके नगर/गाँव में शूरवीरों/वीरांगनाओं की परंपरा रही है? यदि हाँ, तो ये परंपराएँ राजपूतों के वीरतापूर्ण आदर्शों से कितनी समान या भिन्न हैं?

द्वारा अपने मृतक पतियों की चिता पर ज़िंदा जल जाने की प्रथा का भी कुछ कहानियों में उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार जो लोग शूरवीरता के आदर्शों का पालन करते थे, उन्हें अकसर इस आदर्श के लिए अपने जीवन का बलिदान करना होता था।

क्षेत्रीय सीमांतों से परे – कत्थक नृत्य की कहानी

यदि शूरवीरता की परंपराएँ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में मिल सकती हैं, तो नृत्य के विषय में भी यही सच है। आइए, नृत्य के एक रूप, कत्थक, के इतिहास को देखें। यह नृत्य शैली उत्तर भारत के अनेक भागों से जुड़ी है। 'कत्थक' शब्द 'कथा' शब्द से निकला है, जिसका प्रयोग संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में कहानी के लिए किया जाता है। कत्थक मूल रूप से उत्तर भारत के मंदिरों में कथा यानी कहानी सुनाने वालों की एक जाति थी। ये कथाकार अपने हाव-भाव तथा संगीत से अपने कथावाचन को अलंकृत किया करते थे। पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों में भक्ति आंदोलन के प्रसार के साथ कत्थक एक विशिष्ट नृत्य शैली का रूप धारण करने लगा। राधा-कृष्ण के पौराणिक आख्यान (कहानियाँ) लोक नाट्य के रूप में प्रस्तुत किए जाते थे, जिन्हें 'रासलीला' कहा जाता था। रासलीला में लोक नृत्य के साथ कत्थक कथाकार के मूल हाव-भाव भी जुड़े होते थे।

मुग़ल बादशाहों और उनके अभिजातों के शासनकाल में कत्थक नृत्य राजदरबार में प्रस्तुत किया जाता था, जहाँ इस नृत्य ने अपने वर्तमान अभिलक्षण अर्जित किए और वह एक विशिष्ट नृत्य शैली के रूप में विकसित हो गया। आगे चलकर यह दो परंपराओं अर्थात् 'घरानों' में फूला-फला: राजस्थान (जयपुर) के राजदरबारों में और लखनऊ में। अवध के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह के संरक्षण में यह एक प्रमुख कला-रूप में उभरा। 1850 – 1875 के दौरान यह नृत्य शैली के रूप में इन दो क्षेत्रों में ही नहीं, बल्कि आज के पंजाब, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, बिहार तथा मध्य प्रदेश के निकटवर्ती इलाकों में भी पक्के तौर पर संस्थापित हो गया। इसकी प्रस्तुति में क्लिष्ट तथा द्रुत पद संचालन, उत्तम वेशभूषा तथा कहानियों के प्रस्तुतीकरण एवं अभिनय पर ज़ोर दिया जाने लगा।

चित्र 5
नृत्य की कक्षा, लक्ष्मण मंदिर, खजुराहो

2024-25

अनेक अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों की तरह कत्थक को भी उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में अधिकाँश ब्रिटिश प्रशासकों ने नापसंद किया। फिर भी यह 'जीवित' बचा रहा और गणिकाओं द्वारा पेश किया जाता रहा। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद तो देश में इसे छह 'शास्त्रीय' नृत्य रूपों में मान्यता मिल गई।

श्रेण्य, शास्त्रीय *ऐतिहासिक रूप से इस शब्द का तात्पर्य कला और साहित्य की उन महान कृतियों से है जिनकी रचना पाँचवीं तथा चौथी शताब्दी ई.पू. में प्राचीन यूनान में की गई थी। यही वह काल था जब यूनान में एथेंस उन्नति करते–करते एक अत्यंत उत्कृष्ट स्थिति पर पहुँच गया था। एथेंस की यह उन्नत स्थिति निकट और मध्य पूर्व से भारतीय सीमा पर सिकंदर की विजयों तक बनी रही।*
स्रोत: इतिहास का शब्दकोष विद्यालयों के लिए (त्रिभाषी), एन.सी.ई.आर.टी.

शास्त्रीय नृत्य

किस कला रूप को 'शास्त्रीय' माना जाए? इस प्रश्न का उत्तर देना अकसर बहुत कठिन होता है। क्या हम उस रूप या शैली को 'शास्त्रीय' कहते हैं, जिसका विषय धार्मिक हो? अथवा क्या हम उसे शास्त्रीय इसलिए मानते हैं, क्योंकि उसके लिए अत्यधिक कौशल की आवश्यकता होती है, जो कई वर्षों के लंबे प्रशिक्षण से ही प्राप्त होता है। अथवा यह शास्त्रीय इसलिए है, क्योंकि यह निर्धारित नियमों के अनुसार ही प्रदर्शित या प्रस्तुत किया जाता है और उसमें विभिन्नताओं को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर हमें विचार करने की आवश्यकता है। यह भी स्मरणीय है कि बहुत-से ऐसे नृत्य-रूपों में, जिन्हें 'लोकनृत्य' की श्रेणी में रखा गया है, वे विशिष्टताएँ पाई जाती हैं, जिन्हें 'शास्त्रीय' रूपों का विशिष्ट लक्षण बताया जाता है। यद्यपि 'शास्त्रीय' विशेषण का प्रयोग उन कला रूपों की श्रेष्ठता का सूचक हो सकता है, फिर भी यह हमेशा शब्दशः सही नहीं होता है।

अन्य नृत्य-रूप, जिन्हें इस समय शास्त्रीय माना जाता है, निम्नलिखित हैं:

भरतनाट्यम् (तमिलनाडु)
कथाकली (केरल)
ओडिसी (उड़ीसा)
कुचिपुड़ि (आंध्र प्रदेश)
मणिपुरी (मणिपुर)

चित्र 6
कत्थक नृत्यांगनाएँ, एक दरबारी चित्र

? *इनमें से किसी एक नृत्य-रूप के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करें।*

© NCERT not to be republished

संरक्षकों के लिए चित्रकला – लघुचित्रों की परंपरा

एक अन्य परंपरा जो कई रीतियों से विकसित हुई, वह थी लघुचित्रों की परंपरा। लघुचित्र (जैसा कि उनके नाम से पता चलता है) छोटे आकार के चित्र होते हैं, जिन्हें आमतौर पर जल रंगों से कपड़े या कागज़ पर चित्रित किया जाता है। प्राचीनतम लघुचित्र, तालपत्रों अथवा लकड़ी की तख्तियों पर चित्रित किए गए थे। इनमें से सर्वाधिक सुंदर चित्र, जो पश्चिम भारत में पाए गए जैन ग्रंथों को सचित्र बनाने के लिए प्रयोग किए गए थे। मुग़ल बादशाह अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने अत्यंत कुशल चित्रकारों को संरक्षण प्रदान किया था, जो प्राथमिक रूप से इतिहास और काव्यों की पाण्डुलिपियाँ चित्रित करते थे। ये पांडुलिपियाँ आमतौर पर चटक रंगों में चित्रित की जाती थीं और उनमें दरबार के दृश्य, लड़ाई तथा शिकार के दृश्य और सामाजिक जीवन के अन्य पहलू चित्रित किए जाते थे। अकसर उपहार के तौर पर भी इन चित्रों का आदान-प्रदान किया जाता था और ये कुछ गिने-चुने लोगों – बादशाह और उनके घनिष्ठ जनों – द्वारा ही देखे जा सकते थे।

चित्र 7
शिकार के दौरान आराम करते हुए अकबर, मुग़ल लघुचित्र

मुग़ल साम्राज्य के पतन के साथ अनेक चित्रकार मुग़ल दरबार छोड़कर नए उभरने वाले क्षेत्रीय राज्यों के दरबारों में चले गए। परिणामस्वरूप मुगलों की कलात्मक रुचियों ने दक्षिण के क्षेत्रीय दरबारों और राजस्थान के राजपूती राजदरबारों को प्रभावित किया। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने अपनी विशिष्ट विशेषताओं को सुरक्षित रखा और उनका विकास भी किया। मुग़ल उदाहरणों का अनुसरण करते हुए, शासकों तथा उनके दरबारों के दृश्य चित्रित किए जाने लगे। इनके साथ-साथ, मेवाड़, जोधपुर, बूंदी, कोटा और किशनगढ़ जैसे केंद्रों में पौराणिक कथाओं तथा काव्यों के विषयों का चित्रण बराबर जारी रहा।

चित्र 8
होली खेलते हुए महाराणा राम सिह II, राजपूत लघुचित्र, कोटा

ऐसा ही एक अन्य क्षेत्र था, आधुनिक हिमाचल प्रदेश के इर्द-गिर्द हिमालय की तलहटी का इलाका। सत्रहवीं शताब्दी के बाद वाले वर्षों में, इस क्षेत्र में लघुचित्रकला की एक साहसपूर्ण एवं भावप्रवण शैली का विकास हो गया, जिसे 'बसोहली' शैली कहा जाता है। यहाँ जो सबसे लोकप्रिय पुस्तक चित्रित की गई वह थी– भानुदत्त की *रसमंजरी*। 1739 में नादिरशाह के आक्रमण और दिल्ली विजय के परिणामस्वरूप मुग़ल कलाकार, मैदानी इलाकों की

चित्र 9
कृष्ण, राधा और उसकी सखियाँ, पहाड़ी लघुचित्र, कांगड़ा

2024-25

अनिश्चितताओं से बचने के लिए पहाड़ी क्षेत्रों की ओर पलायन कर गए। उन्हें वहाँ जाते ही आश्रयदाता तैयार मिले, जिसके फलस्वरूप चित्रकारी की कांगड़ा शैली विकसित हुई। अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग तक, कांगड़ा के कलाकारों ने एक नयी शैली विकसित कर ली, जिसने लघु चित्रकारी में एक नई जान डाल दी। उनकी प्रेरणा का स्रोत, वहाँ की वैष्णव परंपराएँ थीं। ठंडे नीले और हरे रंगों सहित कोमल रंगों का प्रयोग और विषयों का काव्यात्मक निरूपण कांगड़ा शैली की विशेषता थी।

स्मरण रहे कि साधारण स्त्री-पुरुष भी बर्तनों, दीवारों, कपड़ों, फ़र्श आदि पर अपनी कलाकृतियाँ चित्रित करते थे। कला के इन नमूनों में से कुछ ही बच पाते थे। इसके विपरीत लघुचित्र राजमहलों में सावधानीपूर्वक रखे जाते थे, जिससे वे सदियों तक सुरक्षित रहें।

बंगाल – नज़दीक से एक नज़र

एक क्षेत्रीय भाषा का विकास

जैसा कि हमने प्रारंभ में देखा था, हम अकसर क्षेत्रों के नाम वहाँ के निवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा के अनुसार निर्धारित करते हैं। इसलिए हम यह मान लेते हैं कि बंगाल में लोग हमेशा बंगाली (बंगला) ही बोलते थे। किंतु यह एक दिलचस्प बात है कि आज बंगाली, संस्कृत से निकली हुई भाषा मानी जाती है। प्रारंभिक (ईसा-पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के मध्य भाग के) संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन से यह पता चलता है कि बंगाल के लोग संस्कृत से उपजी हुई भाषाएँ नहीं बोलते थे। तो फिर नई भाषा का उद्भव कैसे हुआ?

चित्र 10
सबसे पहली बंगाली रामायण के तालपत्र की पांडुलिपि का एक पृष्ठ

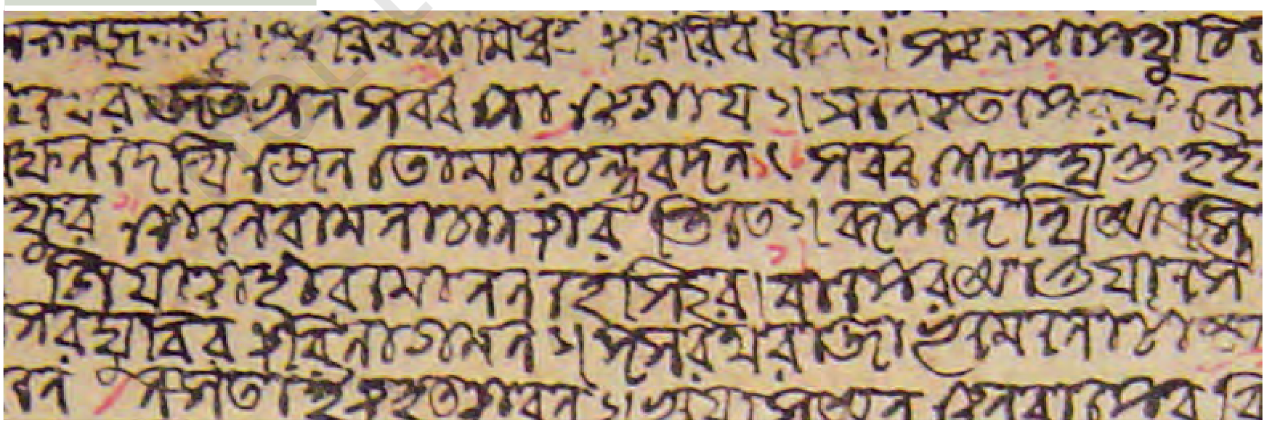

© NCERT not to be republished

ईसा पूर्व चौथी-तीसरी शताब्दी से बंगाल और मगध (दक्षिण बिहार) के बीच वाणिज्यिक संबंध स्थापित होने लगे थे, जिसके कारण संभवतः संस्कृत का प्रभाव बढ़ता गया होगा। चौथी शताब्दी के दौरान, गुप्तवंशीय शासकों ने उत्तरी बंगाल पर अपना राजनीतिक नियंत्रण स्थापित कर लिया और वहाँ ब्राह्मणों को बसाना शुरू कर दिया। इस प्रकार गंगा की मध्यघाटी के भाषायी तथा सांस्कृतिक प्रभाव अधिक प्रबल हो गए और सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्यून सांग ने यह पाया कि बंगाल में सर्वत्र संस्कृत से संबंधित भाषाओं का प्रयोग हो रहा था।

आठवीं शताब्दी से पाल शासकों के अंतर्गत एक क्षेत्रीय राज्य का उद्भव हो गया (अध्याय 2)। चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दियों के बीच बंगाल पर सुल्तानों का शासन रहा, जो दिल्ली में स्थित शासकों से स्वतंत्र थे (अध्याय 3)। 1586 में जब अकबर ने इस प्रदेश (बंगाल) को जीत लिया, तो उसे 'सूबा' माना जाने लगा। उस समय प्रशासन की भाषा तो फ़ारसी थी, लेकिन बंगाली एक क्षेत्रीय भाषा के रूप में विकसित हो रही थी।

वस्तुतः पंद्रहवीं शताब्दी तक आते-आते उपभाषाओं तथा बोलियों का बंगाली समूह, एक सामान्य साहित्यिक भाषा के द्वारा एकबद्ध हो गया। यह साहित्यिक भाषा उस क्षेत्र के पश्चिमी भाग की बोलचाल की भाषा थी, जिसे अब पश्चिमी बंगाल कहा जाता है। यद्यपि बंगाली का उद्भव संस्कृत से ही हुआ है, पर यह अपने क्रम विकास की अनेक अवस्थाओं से गुजरी है। इसके अलावा ग़ैर-संस्कृत शब्दों का एक विशाल शब्द भंडार, जो जनजातीय भाषाओं, फ़ारसी और यूरोपीय भाषाओं सहित अनेक स्रोतों से इसे प्राप्त हुआ है, आधुनिक बंगाली का एक हिस्सा बन गया है।

बंगाली के प्रारंभिक साहित्य को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है– एक श्रेणी, संस्कृत की ऋणी है और दूसरी, उससे स्वतंत्र है। पहली श्रेणी में संस्कृत महाकाव्यों के अनुवाद, 'मंगलकाव्य' (शाब्दिक अर्थों में शुभ यानी मांगलिक काव्य, जो स्थानीय देवी-देवताओं से संबंधित है), और भक्ति साहित्य जैसे– गौड़ीय वैष्णव आंदोलन के नेता श्री चैतन्य देव की जीवनियाँ (अध्याय 6) आदि शामिल हैं।

दूसरी श्रेणी में नाथ साहित्य शामिल है जैसे, मैनामती-गोपीचंद्र के गीत, धर्म ठाकुर की पूजा से संबंधित कहानियाँ, परीकथाएँ, लोककथाएँ और गाथागीत।

© NCERT not to be republished

मैनामती, गोपीचंद्र और धर्म ठाकुर

नाथ लोग, संन्यासी होते थे जो तरह-तरह की यौगिक क्रियाएँ करते थे।

यह गीत-विशेष, जो अकसर अभिनीत किया जाता है, यह बताता है कि रानी मैनामती ने अपने पुत्र गोपीचंद्र को अनेक बाधाओं के समक्ष, संन्यास का मार्ग अपनाने को किस प्रकार प्रोत्साहित किया था।

धर्म ठाकुर एक क्षेत्रीय लोकप्रिय देव हैं, जिनकी पूजा अकसर एक पत्थर या काठ की मूर्ति के रूप में की जाती है।

?

आपके विचार से द्वितीय श्रेणी की कृतियाँ लिखित रूप में क्यों नहीं रखी जाती थीं?

पहली श्रेणी के ग्रंथों का काल-निर्णय करना अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि ऐसी अनेक पांडुलिपियाँ पाई गई हैं, जिनमें यह इंगित किया गया है कि उनकी रचना पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग के बीच की गई थी। दूसरी श्रेणी की कृतियाँ मौखिक रूप से कही-सुनी जाती थीं, इसलिए उनका काल-निर्णय सही-सही नहीं किया जा सकता है। वे खासतौर पर पूर्वी बंगाल में लोकप्रिय थीं, जहाँ ब्राह्मणों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम था।

पीर और मंदिर

पीर
फ़ारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है आध्यात्मिक मार्गदर्शक

सोलहवीं शताब्दी से लोगों ने बड़ी संख्या में पश्चिम बंगाल के कम उपजाऊ क्षेत्रों को छोड़कर दक्षिण-पूर्वी बंगाल के जंगली तथा दलदली इलाकों में प्रवास करना शुरू कर दिया था। ज्यों-ज्यों वे पूर्व की ओर बढ़ते गए, वे जंगलों को साफ़ करके भूमि में धान की खेती करने लगे। शनैः शनैः स्थानीय मछुआ तथा स्थानांतरीय खेती करने वाले लोग, जो अकसर जनजातीय थे, किसानों के नए समुदायों में मिल गए।

इन्हीं दिनों बंगाल पर मुग़लों का नियंत्रण स्थापित हो गया था, जिन्होंने पूर्वी डेल्टा प्रदेश के केंद्रीय भाग में स्थित ढाका नगर में अपनी राजधानी स्थापित की। अधिकारी और कर्मचारी लोग भूमि प्राप्त करके अकसर उस पर मसजिदें बना लेते थे, जो इन इलाकों के धार्मिक रूपांतरण के केंद्रों के रूप में काम आती थीं।

प्रारंभ में बाहर से आकर यहाँ बसने वाले लोग इन अस्थिर परिस्थितियों में रहने के लिए कुछ व्यवस्था तथा आश्वासन चाहते थे। ये सुख-सुविधाएँ तथा आश्वासन उन्हें समुदाय के नेताओं ने प्रदान कीं। ये नेता शिक्षकों और निर्णायकों की भूमिकाएँ भी अदा करते थे। कभी-कभी ऐसा समझा जाता था,

© NCERT not to be republished

कि इन नेताओं के पास अलौकिक शक्तियाँ हैं। स्नेह और आदर से लोग इन्हें **पीर** कहा करते थे।

इस पीर श्रेणी में संत या सूफ़ी और अन्य धार्मिक महानुभाव, साहसी उपनिवेशी, देवत्व प्राप्त सैनिक एवं योद्धा, विभिन्न हिंदू एवं बौद्ध देवी-देवता और यहाँ तक कि **जीवात्माएँ** भी शामिल थे। पीरों की पूजा पद्धतियाँ बहुत ही लोकप्रिय हो गईं और उनकी मज़ारें बंगाल में सर्वत्र पाई जाती हैं।

बंगाल में पंद्रहवीं शताब्दी के बाद वाले वर्षों में मंदिर बनाने का दौर ज़ोरों पर रहा, जो उन्नीसवीं शताब्दी में आकर समाप्त हो गया। हमने देखा है (अध्याय 2) कि मंदिर और अन्य धार्मिक भवन अकसर उन व्यक्तियों या समूहों द्वारा बनाए जाते थे, जो शक्तिशाली बन रहे थे। वे इनके माध्यम से अपनी शक्ति तथा भक्तिभाव का प्रदर्शन करना चाहते थे। बंगाल में साधारण ईंटों और मिट्टी-गारे से अनेक मंदिर 'निम्न' सामाजिक समूहों जैसे कालू (तेली), कंसारी (घंटा धातु के कारीगर) आदि के समर्थन से बने थे। यूरोप की व्यापारिक कंपनियों के आ जाने से नए आर्थिक अवसर पैदा हुए। इन सामाजिक समूहों से संबंधित अनेक परिवारों ने इन अवसरों का लाभ उठाया। जैसे-जैसे लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति सुधरती गई, उन्होंने इन स्मारकों के निर्माण के माध्यम से अपनी प्रस्थिति या प्रतिष्ठा की घोषणा कर दी। जब स्थानीय देवी-देवता, जो पहले गाँवों में छान-छप्पर वाली झोपड़ियों

जीववाद
यह मानना कि पेड़-पौधों, जड़ वस्तुओं और प्राकृतिक घटनाओं में भी जीवात्मा है।

?
यहाँ दिए गए मंदिर की तुलना अध्याय 2 में दिए गए मंदिर से करें।

चित्र 11 (बाएँ)
एक दोचाला छप्परदार झोंपड़ी

चित्र 12 (दाएँ)
एक चौचाला मंदिर

चित्र 13
गोपियों के साथ कृष्ण, श्यामपुर मंदिर से पकी मिट्टी की एक पटिया, विष्णुपुर

में पूजे जाते थे, को ब्राह्मणों द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गई तो उनकी प्रतिमाएँ मंदिरों में स्थापित की जाने लगीं।

इन मंदिरों की शक्ल या आकृति बंगाल की छप्परदार झोपड़ियों की तरह 'दोचाला' (दो छतों वाली) या 'चौचाला' (चार छतों वाली) होती थी। इसके कारण मंदिरों की स्थापत्य कला में विशिष्ट बंगाली शैली का प्रार्दुभाव हुआ। अपेक्षाकृत अधिक जटिल चौचाला यानी चार छतों वाली, ढाँचे में चार त्रिकोणीय छतें चार दीवारों पर रखी जाती थी, जो ऊपर तिर्यक रेखा या एक बिंदु तक जाती थीं। मंदिर आमतौर पर एक वर्गाकार चबूतरे पर बनाए जाते थे। उनके भीतरी भाग में कोई सजावट नहीं होती थी, लेकिन अनेक मंदिरों की बाहरी दीवारें चित्रकारियों, सजावटी टाइलों अथवा मिट्टी की पट्टियों से सजी होती थीं। कुछ मंदिरों में विशेष रूप से पश्चिम बंगाल के बांकुरा ज़िले में विष्णुपुर के मंदिरों में ऐसी सजावटें अत्यंत उत्कृष्ट कोटि तक पहुँच चुकी थीं।

मछली, भोजन के रूप में

चित्र 14
घरेलू उपयोग के लिए मछली तैयार करते हुए, विशालक्ष्मी मंदिर से पकी मिट्टी का एक फलक, आरामबाग

परंपरागत भोजन संबंधी आदतें, आमतौर पर स्थानीय रूप से उपलब्ध खाद्य पदार्थों पर निर्भर करती हैं। बंगाल एक नदीय मैदान है, जहाँ मछली और धान की उपज बहुतायत से होती है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि इन दोनों वस्तुओं को गरीब बंगालियों की भोजन-सूची में भी प्रमुख स्थान प्राप्त है। मछली पकड़ना वहाँ का प्रमुख धंधा रहा है और बंगाली साहित्य में मछली का स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है। इससे ज़्यादा और क्या होगा कि मंदिरों और बौद्ध विहारों की दीवारों पर जो मिट्टी की पट्टियाँ लगी हैं, उनमें भी मछलियों को साफ़ करते हुए और टोकरियों में भर कर बाज़ार ले जाते हुए दर्शाया गया है।

ब्राह्मणों को सामिष भोजन करने की अनुमति नहीं थी, लेकिन स्थानीय आहार में मछली की लोकप्रियता को देखते हुए ब्राह्मण धर्म के विशेषज्ञों ने बंगाली ब्राह्मणों के लिए इस निषेध में ढील दे दी। *बृहद्धर्म पुराण*, जो बंगाल में रचित तेरहवीं शताब्दी का संस्कृत ग्रंथ हैं, ने स्थानीय ब्राह्मणों को कुछ खास किस्मों की मछली खाने की अनुमति दे दी।

कल्पना करें

आप एक राजपूत राजकुमार हैं। आप अपनी कहानी किस प्रकार सुनाना पसंद करेंगे।

© NCERT not to be republished

फिर से याद करें

बीज शब्द

शास्त्रीय

लघुचित्र

पीर

बोली

1. निम्नलिखित में मेल बैठाएँ:

अनंतवर्मन	केरल
जगन्नाथ	बंगाल
महोदयपुरम	उड़ीसा
लीला तिलकम	कांगड़ा
मंगलकाव्य	पुरी
लघुचित्र	केरल

2. मणिप्रवालम् क्या है? इस भाषा में लिखी पुस्तक का नाम बताएँ।
3. कत्थक के प्रमुख संरक्षक कौन थे?
4. बंगाल के मंदिरों की स्थापत्यकला के महत्त्वपूर्ण लक्षण क्या हैं?

आइए विचार करें

5. चारण-भाटों ने शूरवीरों की उपलब्धियों की उद्घोषणा क्यों की?
6. हम जनसाधारण की तुलना में शासकों के सांस्कृतिक रीति-रिवाजों के बारे में बहुत अधिक क्यों जानते हैं?
7. विजेताओं ने पुरी स्थित जगन्नाथ के मंदिर पर नियंत्रण प्राप्त करने के प्रयत्न क्यों किए?
8. बंगाल में मंदिर क्यों बनाए गए?

आइए करके देखें

9. भवनों, प्रदर्शन कलाओं, चित्रकला के विशेष संदर्भ में अपने क्षेत्र की संस्कृति के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्षणों/विशेषताओं का वर्णन करें।

© NCERT not to be republished

10. क्या आप (क) बोलने, (ख) पढ़ने, (ग) लिखने के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं? इनमें से किसी एक भाषा की किसी प्रमुख रचना के बारे में पता लगाएँ और चर्चा करें कि आप इसे रोचक क्यों पाते हैं?

11. उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिणी, पूर्वी और मध्य भारत से एक-एक राज्य चुनें। इनमें से प्रत्येक के बारे में उन भोजनों की सूची बनाएँ, जो आमतौर पर सभी के द्वारा खाए जाते हैं। आप उनमें कोई अंतर या समानताएँ पाएँ, तो उन पर प्रकाश डालें।

12. इनमें से प्रत्येक क्षेत्र से पाँच-पाँच राज्यों की एक-एक अन्य सूची बनाएँ और यह बताएँ कि प्रत्येक राज्य में महिलाओं तथा पुरुषों द्वारा आमतौर पर कौन-से वस्त्र पहने जाते हैं। अपने निष्कर्षों पर चर्चा करें।

© NCERT not to be republished

8 अठारहवीं शताब्दी में नए राजनीतिक गठन

0761CH08

यदि आप मानचित्र 1 और 2 को ध्यानपूर्वक देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दौरान उपमहाद्वीप में कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय घटनाएँ घटीं। गौर कीजिए कि कई स्वतंत्र राज्यों के उदय से मुग़ल साम्राज्य की सीमाएँ किस तरह से बदलीं। आप यह भी देखें कि 1765 तक एक अन्य शक्ति यानी ब्रिटिश सत्ता ने पूर्वी भारत के बड़े-बड़े हिस्सों को सफलतापूर्वक हड़प लिया था। ये मानचित्र हमें

मानचित्र 1

अठारहवीं शताब्दी में नए राज्यों का गठन

© NCERT not to be republished

मानचित्र 2
अठारहवीं शताब्दी के मध्य ब्रिटिश क्षेत्र

यह दर्शाते हैं कि अठारहवीं शताब्दी एक ऐसी अवधि थी, जब भारत में राजनीतिक परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत एक छोटे से समयांतराल में बड़ी तेज़ी से अचानक बदलनी शुरू हो गई थीं। इस अध्याय में हम अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (मोटे तौर पर 1707 में जब औरंगजेब की मृत्यु हुई थी, से 1761 तक, जब पानीपत की तीसरी लड़ाई हुई) के दौरान उपमहाद्वीप में उत्पन्न हुई नई राजनीतिक शक्तियों के बारे में पढ़ेंगे।

मुग़ल साम्राज्य और परवर्ती मुग़लों के लिए संकट की स्थिति

अध्याय 4 में आपने देखा था कि मुग़ल साम्राज्य अपनी सफलता की ऊँचाई पर किस प्रकार पहुँचा था और फिर सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में उसके सामने तरह-तरह के संकट किस प्रकार खड़े होने लगे थे। ऐसा अनेक कारणों से हुआ। बादशाह औरंगज़ेब ने दक्कन में (1679 से) लंबी

?

अध्याय 4 में तालिका 1 देखें। औरंगज़ेब के शासनकाल में किन-किन लोगों ने मुग़ल सत्ता को सबसे लंबे समय तक चुनौती दी।

© NCERT not to be republished

लड़ाई लड़ते हुए साम्राज्य के सैन्य और वित्तीय संसाधनों को बहुत अधिक खर्च कर दिया था।

औरंगज़ेब के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में साम्राज्य के प्रशासन की कार्य-कुशलता समाप्त होने लगी और मनसबदारों के शक्तिशाली वर्गों को वश में रखना केंद्रीय सत्ता के लिए कठिन हो गया। सूबेदार के रूप में नियुक्त अभिजात अकसर राजस्व और सैन्य प्रशासन (दीवानी एवं फ़ौजदारी) दोनों कार्यालयों पर नियंत्रण रखते थे। इससे मुग़ल साम्राज्य के विशाल क्षेत्रों पर उन्हें विस्तृत राजनैतिक, आर्थिक और सैन्य शक्तियाँ मिल गईं। जैसे-जैसे सूबेदारों ने प्रांतों पर अपना नियंत्रण सुदृढ़ किया, राजधानी में पहुँचने वाले राजस्व की मात्र में कमी आती गई।

उत्तरी तथा पश्चिमी भारत के अनेक हिस्सों में हुए ज़मींदारों और किसानों के विद्रोहों और कृषक आंदोलनों ने इन समस्याओं को और भी गंभीर बना दिया। कभी-कभी ये विद्रोह बढ़ते हुए करों के भार के विरुद्ध किए गए थे और कभी-कभी ये शक्तिशाली सरदारों के द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने की कोशिशें थीं। अतीत में भी विद्रोही समूहों ने मुग़ल सत्ता को चुनौती दी थी। परंतु अब ऐसे समूहों ने क्षेत्र के आर्थिक संसाधनों का प्रयोग अपनी स्थितियों को मज़बूत करने के लिए किया। जिस तरह से धीरे-धीरे राजनैतिक व आर्थिक सत्ता, प्रांतीय सूबेदारों, स्थानीय सरदारों व अन्य समूहों के हाथों में आ रही थी, औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी इस बदलाव को रोक न सके।

भरपूर फ़सल और खाली तिजोरियाँ

एक तत्कालीन लेखक ने साम्राज्य के वित्तीय दिवालियेपन का वर्णन इन शब्दों में किया है:

बड़े ज़मींदार निस्सहाय और निर्धन हो गए हैं। उनके किसान वर्ष में दो फ़सलें उगाते हैं, लेकिन उन्हें दोनों में से कुछ नहीं मिलता है। उनके स्थानीय गुमाश्ते एक तरह से किसानों के हाथ की कठपुतली बने रहते हैं, जैसे कि स्वयं किसान अपने ऋणदाता के वश में रहता है, जब तक कि वह साहूकार का कर्ज़ा नहीं चुका देता। इस प्रकार संपूर्ण व्यवस्था एवं प्रशासन इतना चकनाचूर हो चुका है कि यद्यपि किसान अपनी फ़सल के जरिए मानो सोना बटोरता है, लेकिन उसके मालिक ज़मींदार को एक तिनके का टुकड़ा भी नहीं मिलता है। ऐसी हालत में ज़मींदार सशस्त्र सेना कैसे रख सकते हैं, जिनकी उससे आशा की जाती है? वे अपने सैनिकों को जो लड़ाई के समय उनके आगे-आगे चलते हैं और घुड़सवारों को जो उनके ठीक पीछे चलते हैं, पैसा कहाँ से देंगे?

2024-25

© NCERT not to be republished

इस आर्थिक व राजनीतिक संकट के बीच ईरान के शासक नादिरशाह ने 1739 में दिल्ली पर आक्रमण किया और संपूर्ण नगर को लूट कर वह बड़ी भारी मात्रा में धन-दौलत ले गया। नादिरशाह के आक्रमण के बाद अफ़गान शासक अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों का ताँता लगा रहा। उसने तो 1748 से 1761 के बीच पाँच बार उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और लूटपाट मचाई।

नादिरशाह का दिल्ली पर आक्रमण

नादिरशाह के आक्रमण के परिणामस्वरूप दिल्ली में जो विध्वंस हुआ, उसका वर्णन समकालीन प्रेक्षकों ने किया था। इनमें से एक ने मुग़ल कोष से जिस तरह धन लूटा गया था, उसका वर्णन इस तरह से किया है:

साठ लाख रुपए और कई हज़ार सोने के सिक्के, लगभग एक करोड़ रुपए के सोने के बर्तन, लगभग पचास करोड़ रुपए के गहने, जवाहरात और अन्य चीज़ें ले गया, जिनमें से कुछ तो इतनी बेशकीमती थीं कि दुनिया में उनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता है, जैसे– तख्ते ताउस यानी मयूर सिंहासन।

एक अन्य वृत्तांत में दिल्ली पर आक्रमण के प्रभाव का वर्णन मिलता है:

जो कभी मालिक थे, अब बड़ी दर्दनाक हालत में आ गए। जिन्हें कभी भरपूर आदर-इज़्ज़त दी जाती थी, उन्हें अब प्यास बुझाने के लिए पानी भी नहीं मिलता। अलग-थलग पड़े लोगों को उनके कोनों से खींचकर बाहर निकाल दिया गया। दौलतमंदों को भिखारी बना दिया गया। जो शौकीन लोग कभी तरह-तरह के सुंदर कपड़े पहनकर पोशाकों का नया-नया फैशन चलाते थे, अब नंगे घूमने लगे, और जिनके पास ज़मीन-जायदाद की कोई कमी नहीं थी, वे अब बेघर हो गए... नया शहर (शाहजहाँनाबाद) अब मलबे का ढेर बन गया। (नादिरशाह ने) तब शहर के पुराने मोहल्लों पर हमला बोला और वहाँ की सारी की सारी दुनिया को तबाह कर डाला...

चित्र 1
नादिरशाह का 1779 का एक चित्र

साम्राज्य पर सब ओर से दबाव तो पड़ ही रहा था, अभिजातों के विभिन्न समूहों की पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता ने उसे और भी कमज़ोर बना डाला। ये अभिजात दो बड़े गुटों में बँटे हुए थे– ईरानी और तूरानी (तुर्क मूल के)। काफ़ी समय तक परवर्ती मुग़ल बादशाह इनमें से एक या दूसरे समूह के हाथों की कठपुतली बने रहे। बेहद अपमानजनक स्थिति तब पैदा हो गई, जब दो मुग़ल बादशाहों–फर्रूख़सियर (1713–1719) और आलमगीर द्वितीय

2024-25

चित्र 2
एक अभिजात के दरबार में स्वागत करते हुए फर्रूख़सियर

(1754–1759) की हत्या हो गई और दो अन्य बादशाहों, अहमदशाह (1748–1754) और शाह आलम द्वितीय (1759–1816) को उनके अभिजातों ने अंधा कर दिया।

मुग़ल सम्राटों की सत्ता के पतन के साथ-साथ बड़े प्रांतों के सूबेदारों और बड़े ज़मींदारों ने उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में अपनी शक्ति और प्रबल बना ली, जैसे अवध, बंगाल और हैदराबाद।

राजपूत

बहुत-से राजपूत घराने विशेष रूप से अम्बर और जोधपुर के राजघराने मुग़ल व्यवस्था में विशिष्टता के साथ सेवारत रहे थे। बदले में उन्हें अपनी वतन जागीरों पर पर्याप्त स्वायत्तता का आनंद लेने की अनुमति मिली हुई थी। अब अठारहवीं शताब्दी में इन शासकों ने अपने आस-पास के इलाकों पर अपने नियंत्रण का विस्तार करने के लिए प्रयास शुरू किए। जोधपुर के राजा अजीत सिंह ने भी मुग़ल दरबार की गुटीय राजनीति में अपने पैर फँसा दिए।

इन प्रभावशाली राजपूत घरानों ने गुजरात और मालवा के लाभदायक सूबों की सूबेदारी का दावा किया। जोधपुर के राजा अजीत सिंह को गुजरात की सूबेदारी और अम्बर के सवाई राजा जयसिंह को मालवा की सूबेदारी मिल गई। बादशाह जहांदार शाह ने 1713 में इन राजाओं के इन पदों का नवीकरण कर दिया। उन्होंने अपने वतनों के पास-पड़ौस के शाही इलाकों के कुछ हिस्सों पर कब्ज़ा करने की भी कोशिशें की। जोधपुर राजघराने ने नागौर को जीत लिया और अपने राज्य में मिला लिया। दूसरी ओर अम्बर ने भी बूंदी के बड़े-बड़े हिस्सों पर अपना कब्ज़ा कर लिया। सवाई राजा जयसिंह ने जयपुर में अपनी नई राजधानी स्थापित की और उसे 1722 में आगरा की सूबेदारी दे दी गई। 1740 के दशक से राजस्थान में मराठों

कई राजपूत सरदारों ने पहाड़ियों की चोटियों पर किले बनाये, जो सत्ता के केंद्र बने। व्यापक किलेबंदी के साथ इन भव्य संरचनाओं में नगर, महलें, मंदिर, व्यापारिक केंद्र, जल संग्रहण संरचनाएँ और अन्य इमारतें होती थीं। चित्तौडगढ़ किले में, तालाब, कुण्डी (कुएँ), बावली जैसे कई जल निकाय थे।

चित्र 3 चित्तौड़गढ़ किला, राजस्थान

के अभियानों ने इन रजवाड़ों पर भारी दबाव डालना शुरू कर दिया, जिससे उनका अपना विस्तार आगे होने से रुक गया।

जयपुर के राजा जयसिंह

1732 के एक फारसी वृत्तांत में राजा जयसिंह का वर्णन:

राजा जयसिंह अपनी सत्ता की चरम सीमा पर थे। बारह वर्ष के लिए वे आगरा के सूबेदार रहे और पाँच या छह वर्ष के लिए मालवा के। उनके पास विशाल सेना, तोपखाना तथा भारी मात्र में धन-संपदा थी। उनका प्रभाव दिल्ली से लेकर नर्मदा के तट तक फैला हुआ था।

चित्र 5
मेहरानगढ़ किला, जोधपुर

आज़ादी हासिल करना

सिक्ख

अध्याय 6 में आपने पढ़ा कि सत्रहवीं शताब्दी के दौरान सिक्ख एक राजनैतिक समुदाय के रूप में गठित हो गए। इससे पंजाब के क्षेत्रीय राज्य-निर्माण को बढ़ावा मिला। गुरु गोबिंद सिंह ने 1699 में खालसा पंथ की स्थापना से पूर्व और उसके पश्चात् राजपूत व मुग़ल शासकों के खिलाफ़ कई लड़ाइयाँ लड़ीं। 1708 में गुरु गोबिंद सिंह की मृत्यु के बाद बंदा बहादुर

कई राजपूत शासकों ने मुगलों का अधिराजत्व स्वीकार किया था लेकिन मेवाड़ एकमात्र ऐसा राजपूत राज्य था जिसने मुग़ल सत्ता को चुनौती दी थी। राणा प्रताप 1572 में उदयपुर तथा मेवाड़ के बड़े क्षेत्र पर नियंत्रण के साथ मेवाड़ की राजगद्दी पर आसीन हुए। राणा के पास मुग़ल अधिराजत्व को स्वीकार करने के लिए कई दूतों को भेजा गया लेकिन वे अपने निर्णय पर दृढ़ रहे।

चित्र 4
जयपुर में जंतर मंतर

अम्बेर के शासक सवाई जयसिंह ने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, मथुरा और वाराणसी में पांच खगोलीय वेधशालाओं का निर्माण किया। जंतर मंतर के नाम से विख्यात इन वेधशालाओं में खगोलीय पिंडों के अध्ययन हेतु कई उपकरण हैं।

के नेतृत्व में 'खालसा' ने मुग़ल सत्ता के खिलाफ़ विद्रोह किए। उन्होंने बाबा गुरु नानक और गुरु गोबिंद सिंह के नामों वाले सिक्के गढ़कर अपने शासन को सार्वभौम बताया। सतलुज और यमुना नदियों के बीच के क्षेत्र में उन्होंने अपने प्रशासन की स्थापना की। 1715 में बंदा बहादुर को बंदी बना लिया गया और उसे 1716 में मार दिया गया।

?

खालसा से क्या अभिप्राय है? क्या आपको याद है कि इसके बारे में आपने अध्याय 6 में पढ़ा है?

अठारहवीं शताब्दी में कई योग्य नेताओं के नेतृत्व में सिक्खों ने अपने-आपको पहले 'जत्थों' में, और बाद में 'मिस्लों' में संगठित किया। इन जत्थों और मिस्लों की संयुक्त सेनाएँ 'दल खालसा' कहलाती थीं। उन दिनों दल खालसा, बैसाखी और दीवाली के पर्वों पर अमृतसर में मिलता था। इन बैठकों में वे सामूहिक निर्णय लिए जाते थे, जिन्हें गुरमत्ता (*गुरु के प्रस्ताव*) कहा जाता था। सिक्खों ने *राखी* व्यवस्था स्थापित की, जिसके अंतर्गत किसानों से उनकी उपज का 20 प्रतिशत कर के रूप में लेकर बदले में उन्हें संरक्षण प्रदान किया जाता था।

चित्र 7
महाराजा रणजीत सिंह की तलवार

चित्र 6 *दसवें गुरु, गुरु गोबिंद सिंह*

गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा को प्रेरित किया था कि शासन उनके भाग्य में है (*राज करेगा खालसा*)। अपने सुनियोजित संगठन के कारण खालसा, पहले मुग़ल सूबेदारों के खिलाफ़ और फिर अहमदशाह अब्दाली के खिलाफ़ सफल विरोध प्रकट कर सका। (अहमदशाह अब्दाली ने मुग़लों से पंजाब का समृद्ध प्रांत और सरहिंद की सरकार को अपने कब्ज़े में कर लिया था।) खालसा ने 1765 में अपना सिक्का गढ़कर सार्वभौम शासन की घोषणा की। यह महत्त्वपूर्ण है कि सिक्के पर उत्कीर्ण शब्द वही थे, जो बंदा बहादुर के समय में खालसा के आदेशों में पाए जाते हैं।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में सिक्ख इलाके सिंधु से यमुना तक फैले हुए थे, यद्यपि ये विभिन्न शासकों में बँटे हुए थे। इनमें से एक शासक महाराजा रणजीत सिंह ने विभिन्न सिक्ख समूहों में फिर से एकता कायम करके 1799 में लाहौर को अपनी राजधानी बनाया।

मराठा

मराठा राज्य एक अन्य शक्तिशाली क्षेत्रीय राज्य था, जो मुग़ल शासन का लगातार विरोध करके उत्पन्न हुआ था। छत्रपति शिवाजी महाराज (1630–1680) ने शक्तिशाली योद्धा परिवारों (देशमुखों) की सहायता से एक स्थायी राज्य की स्थापना की। अत्यंत गतिशील कृषक-पशुचारक (कुनबी) मराठों की सेना के मुख्य आधार बन गए। शिवाजी ने प्रायद्वीप में मुग़लों को चुनौती देने के लिए इस सैन्य-बल का प्रयोग किया। शिवाजी की मृत्यु के पश्चात्, मराठा राज्य में प्रभावी शक्ति, के एक परिवार के हाथ में रही, जो शिवाजी के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में 'पेशवा' (प्रधानमंत्री) के रूप में अपनी सेवाएँ देते रहे। पुणे मराठा राज्य की राजधानी बन गया।

पेशवाओं की देखरेख में मराठों ने एक अत्यंत सफल सैन्य संगठन का विकास कर लिया। उनकी सफलता का रहस्य यह था कि वे मुग़लों के किलाबंद इलाकों से टक्कर न लेते हुए, उनके पास से चुपचाप निकलकर शहरों-कस्बों पर हमला बोलते थे और मुगल सेना से ऐसे मैदानी इलाकों में मुठभेड़ लेते थे; जहाँ रसद पाने और कुमक आने के रास्ते आसानी से रोके जा सकते थे।

1720 से 1761 के बीच, मराठा साम्राज्य का काफ़ी विस्तार हुआ। उसने शनैः-शनैः और काफ़ी सफलतापूर्वक मुगल साम्राज्य की सत्ता को क्षति

चित्र 8 छत्रपति शिवाजी महाराज

17वीं सदी के अंत तक दक्कन में शिवाजी के नेतृत्व में एक शक्तिशाली राज्य के उदय की शुरुआत हुई, जिससे अंततः एक मराठा राज्य की स्थापना हुई। शिवाजी का जन्म 1630 में शाहजी और जीजाबाई से हुआ। अपनी माता और अभिभावक दादा कोंडदेव के मार्ग निर्देशन में शिवाजी कम उम्र में ही विजयपथ पर निकल पड़े। जावली पर कब्ज़े ने उन्हें मवाला पठारों का अविवादित मुखिया बना दिया जिसने उनके क्षेत्र-विस्तार का पथ प्रशस्त किया। बीजापुर और मुगलों के खिलाफ उनके कारनामों ने उन्हें विख्यात व्यक्तित्व बना दिया। वे अपने विरोधियों के खिलाफ प्रायः गुरिल्ला युद्धकला का प्रयोग करते थे। चौथ और सरदेशमुखी पर आधारित राजस्व संग्रह प्रणाली की सहायता से उन्होंने एक मज़बूत मराठा राज्य की नींव रखी।

पहुँचाई। 1720 के दशक तक मालवा और गुजरात मुग़लों से छीन लिए गए। 1730 के दशक तक, मराठा नरेश को समस्त दक्कन प्रायद्वीप के अधिपति के रूप में मान्यता मिल गई और साथ ही इस क्षेत्र पर **चौथ** और **सरदेशमुखी** कर वसूलने का अधिकार भी मिल गया।

1737 में दिल्ली पर धावा बोलने के बाद मराठा प्रभुत्व की सीमाएँ तेज़ी से बढ़ीं। वे उत्तर में राजस्थान और पंजाब, पूर्व में बंगाल और उड़ीसा तथा दक्षिण में कर्नाटक और तमिल एवं तेलुगु प्रदेशों तक फैल गईं। इन क्षेत्रों को औपचारिक रूप से मराठा साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया, मगर मराठा प्रभुसत्ता को स्वीकार करने के तरीके के रूप में उनसे भेंट की रकम ली जाने लगी। साम्राज्य के इस विस्तार से उन्हें संसाधनों का भंडार तो मिल गया, मगर उसके लिए उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ी। मराठों के सैन्य अभियानों के कारण अन्य शासक भी उनके खिलाफ़ हो गए। परिणामस्वरूप मराठों को 1761 में पानीपत की तीसरी लड़ाई में अन्य शासकों से कोई सहायता नहीं मिली।

अंतहीन सैन्य अभियानों के साथ-साथ मराठों ने एक प्रभावी प्रशासन व्यवस्था तैयार की। जब किसी इलाके पर एक बार विजय अभियान पूरा हो जाता था और मराठों का शासन सुरक्षित हो जाता था, तो वहाँ स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए धीरे-धीरे भू-राजस्व की माँग की गई। कृषि को प्रोत्साहित किया गया और व्यापार को पुनर्जीवित किया गया। इससे सिंधिया, गायकवाड़ और भोंसले जैसे मराठा सरदारों को शक्तिशाली सेनाएँ खड़ी करने के लिए संसाधन मिल सके। 1720 के दशक में मालवा में मराठा अभियानों ने उस क्षेत्र में स्थित शहरों के विकास व समृद्धि को कोई हानि नहीं पहुँचाई। उज्जैन सिंधिया के संरक्षण में और इंदौर होल्कर के आश्रय में फलता-फूलता रहा। ये शहर हर तरह से बड़े और समृद्धिशाली थे और वे महत्त्वपूर्ण वाणिज्यिक और सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में कार्य कर रहे थे। मराठों द्वारा नियंत्रित इलाकों में व्यापार के नए मार्ग खुले। चंदेरी के क्षेत्र में उत्पादित रेशमी वस्त्रों को मराठों की राजधानी पुणे में नया बाज़ार मिला। बुरहानपुर पहले आगरा और सूरत के बीच की धुरी पर ही अपने व्यापार में संलग्न था, लेकिन अब उसने अपने वाणिज्यिक भीतरी क्षेत्र को बढ़ाकर दक्षिण में पुणे और नागपुर को तथा पूर्व में लखनऊ तथा इलाहाबाद को शामिल कर लिया था।

प्रमुख मराठा राज्यकर्ता

छत्रपति शिवाजी महाराज (1630–1680)
छत्रपति संभाजी महाराज (1681–1689)
छत्रपति राजाराम महाराज (1689–1700)
महाराणी ताराबाई (1700–1761)
छ. साहू महाराज (1682-1749)
संदर्भ–
मजूमदार आर. सी., *2007. द मुग़ल एंपायर, भारतीय विघा भवन, मुंबई.*

चौथ

ज़मींदारों द्वारा वसूले जाने वाले भू-राजस्व का 25 प्रतिशत। दक्कन में इनको मराठा वसूलते थे।

सरदेशमुखी

दक्कन में मुख्य राजस्व संग्रहकर्त्ता को दिए जाने वाले भू-राजस्व का 9–10 प्रतिशत हिस्सा।

बाज़ी राव प्रथम, जो बाजीराव बल्लाल के नाम से भी जाने जाते हैं, पेशवा बालाजी विश्वनाथ के पुत्र थे। वह एक महान मराठा सेनापति थे। उन्हें विंध्य के पार मराठा राज्य के विस्तार का श्रेय प्राप्त है तथा वे मालवा, बुंदेलखंड, गुजरात और पुर्तगालियों के खिलाफ सैन्य अभियानों के लिए भी जाने जाते हैं।

© NCERT not to be republished

जाट

अन्य राज्यों की तरह जाटों ने भी सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में अपनी सत्ता सुदृढ़ की। अपने नेता चूड़ामन के नेतृत्व में उन्होंने दिल्ली के पश्चिम में स्थित क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण कर लिया। 1680 के दशक तक आते-आते उनका प्रभुत्व दिल्ली और आगरा के दो शाही शहरों के बीच के क्षेत्र पर होना शुरू हो गया। वस्तुतः कुछ अर्से के लिए वे आगरा शहर के अभिरक्षक ही बन गए।

जाट, समृद्ध कृषक थे और उनके प्रभुत्व-क्षेत्र में पानीपत तथा बल्लभगढ़ जैसे शहर महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र बन गए। सूरजमल के राज में भरतपुर शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा। 1739 में जब नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला बोलकर उसे लूटा, तो दिल्ली के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भरतपुर में शरण ली। नादिरशाह के पुत्र जवाहिरशाह के पास तीस हज़ार सैनिक थे। उसने बीस हज़ार अन्य सैनिक मराठाओं से लिए, पंद्रह हज़ार सैनिक सिक्खों से लिए और इन सबके बलबूते पर वह मुग़लों से लड़ा।

जहाँ भरतपुर का किला काफ़ी हद तक पारंपरिक शैली में बनाया गया, वहीं दीग में जाटों ने अम्बर और आगरा की शैलियों का समन्वय करते हुए एक विशाल बाग-महल बनवाया। शाही वास्तुकला से जिन रूपों को पहली बार शाहजहाँ के युग में जोड़ा गया था, दीग की इमारतें उन्हीं रूपों के नमूने पर बनाई गई थीं।

जाटों की शक्ति सूरज मल के समय पराकाष्ठा पर पहुँची, जिन्होंने 1756–1763 के दौरान भरतपुर जाट राज्य को (आधुनिक राजस्थान में) संगठित किया। सूरज मल के राजनैतिक नियंत्रण में, जो क्षेत्र शामिल थे उसमें आधुनिक पूर्वी राजस्थान, दक्षिणी हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और दिल्ली शामिल थे। सूरज मल ने कई किले और महल बनवाए जिनमें भरतपुर का प्रसिद्ध लोहागढ़ का किला इस क्षेत्र में बने सबसे मज़बूत किलों में से एक था।

चित्र 9
अठारहवीं शताब्दी का दीग का राजमहल समूह। इमारत की छत पर मुख्य सभा भवन के 'बांग्ला गुंबद' पर गौर करें।

© NCERT not to be republished

कल्पना करें

आप अठारहवीं शताब्दी के एक राज्य के शासक हैं। अब यह बताएँ कि आप अपने प्रांत में अपनी स्थिति को मज़बूत करने के लिए क्या-क्या कदम उठाना चाहेंगे और ऐसा करते समय आपके सामने क्या-क्या विरोध अथवा समस्याएँ खड़ी की जा सकती हैं।

बीज शब्द

सूबेदारी

दल खालसा

मिस्ल

फौज़दारी

इजारादारी

चौथ

सरदेशमुखी

फिर से याद करें

1. बताएँ सही या गलत:

   (क) नादिरशाह ने बंगाल पर आक्रमण किया।

   (ख) सवाई राजा जयसिंह इन्दौर का शासक था।

   (ग) गुरु गोबिद सिंह सिक्खों के दसवें गुरु थे।

   (घ) पुणे अठारहवीं शताब्दी में मराठों की राजधानी बना।

आइए विचार करें

2. अठारहवीं शताब्दी में सिक्खों को किस प्रकार संगठित किया गया?
3. मराठा शासक दक्कन के पार विस्तार क्यों करना चाहते थे?
4. क्या आपके विचार से आज महाजन और बैंकर उसी तरह का प्रभाव रखते हैं, जैसाकि वे अठारहवीं शताब्दी में रखा करते थे?
5. क्या अध्याय में उल्लिखित कोई भी राज्य आपके अपने प्रांत में विकसित हुए थे? यदि हाँ, तो आपके विचार से अठारहवीं शताब्दी का जनजीवन आगे इक्कीसवीं शताब्दी के जनजीवन से किस रूप में भिन्न था?

आइए करके देखें

6. राजपूतों, जाटों, सिक्खों अथवा मराठों में से किसी एक समूह के शासकों के बारे में कुछ और कहानियों का पता लगाएँ।

© NCERT not to be republished